# शुकराज कुमार

प्रकाशक

वृहद् (वड़) गच्छीय श्रीपूज्य जैनाचार्य श्री

श्रीचन्द्रसिंहसूरीश्वर शिष्य

**पण्डित काशीनाथ जैन**

कलकत्ता

२०१ हरिसन रोड के "नरसिंह प्रेस" में

मैनेजर पंडित काशीनाथ जैन

द्वारा मुद्रित।

प्रथम वार १००० } सन् १९२४ { मूल्य १)

# प्रस्तावना

प्राचीन जैनाचार्योंने अपने वीर शिरोमणि आदर्श पुरुषोंकी उपदेशप्रद एवं मनोरञ्जक कहानियाँ लिखकर जैन समाजके लिये बड़ा भारी उपकारका काम कीया है। वास्तवमें उन महा पुरुषोंने अपना सारा जीवन परोपकारके कार्यमें ही व्यय कीया है। इस तरहके उपदेशप्रद ग्रन्थोंकी रचना कर वे अपनेको संसारमें अमर बना गये हैं। हमारा यह ग्रन्थ भी प्राचीन जैनाचार्यका निर्माण कीया हुआ है, उसीका यह अनुवाद है। इसमें शुकराजकी जीवन घटनाओंका उल्लेख कीया गया है। इसके अतिरिक्त प्रसंगोपात उपदेश प्रद बातें भी दी गईं हैं।

प्राय: इस ग्रन्थमें यही बात अधिक दिखाई गई है, कि "संसारमें प्राणीलोग किस तरह कर्म उपार्जन करते हैं. और उनका वे किस तरह भोग करते हैं।" शुकराजका सारा जीवन इसी विषयपर वर्णित हुआ है।

शुकराजको बाल-कालमें ही जातिस्मरण ज्ञान हो जानेके कारण अपने पूर्व भवाक सारा वृत्तान्त मालूम हो जाता है। शुकराजके पूर्व भवकी जो दोनों स्त्रियाँ थीं, वही दोनों स्त्रियाँ इस भवमें उसके माता-पिता बनते हैं। इस संसार लीलाको देखकर वह आ-

श्चर्यचकित होकर छः मास पर्यन्त गूँगा बना रहता है। माता पिता उसे रोगग्रस्त समझकर नाना उपचार किया करते हैं। किन्तु शारिरिक व्याधि न होनेके कारण उसका गूँगापन नहीं मिटता है। एक दिन राजा और रानी श्रीदत्त केवलीके पास जाकर अपने पुत्र के गूँगापनका कारण पूछते हैं, इसपर केवली माहाराज शुकके पूर्व भवका वृत्तान्त सुनाकर उसे बोलनेके लिये आदेश करते हैं। शुकराज इस असार संसारकी आश्चर्य लीलाको जानकर अपने जन्मदाताओंको माता पिता कह कर पुकारता है। पुत्रका गूँगापन दूर होनेके कारण माता-पिता बड़े ही प्रसन्न होते हैं।

शुकराजके पूर्व भव राजा जितारीके भवमें श्रुतसागर आचार्य महाराजने विमलाचल सिद्धक्षेत्र तीर्थकी महिमा पर धर्मोपदेश दीया वह वड़ा ही उपदेशप्रद हैं। यह कथा अवश्य पढ़नी चाहिये।

छट्टे परिच्छेदमें श्रीदत्त और शंखदत्तकी कथा आती है, वह बड़ी ही उपदेशप्रद है। इस कथासे संसारकी असारताका खूब अच्छा परिचय मिलता है। मनुष्य किस प्रकार कुकर्म करता है। और उसे उसका किस तरह बदला मिलता है। यह बात इस कथासे ठीक मालूम हो जाती है। अस्तु,

हमारे प्रेमी पाठकोंसे नम्रनिवेदन है, कि इस पुस्तकके भीतर किसी तरहकी त्रुटि रह गई हों तो उसे सुधार कर पढ़ें।

२०१, हरिसनरोड
कलकत्ता।

आपका
काशीनाथ जैन।

# शुकराज कुमार

## पहला परिच्छेद

अत्यन्त प्राचीन कालकी बात है। उन दिनों इस भरतक्षेत्रमें क्षिति प्रतिष्ठित नामका एक बड़ाही प्रसिद्ध नगर था। उस नगरमें ऋतुध्वज नामक राजाके पुत्र मृगध्वज, जो रूपमें साक्षात् मकरध्वज ( कामदेव ) ही थे और जिनके तेज-प्रतापकी अग्निमें सारे शत्रु जलकर भस्म हो गये थे, राज्य करते थे। राजलक्ष्मी, न्यायलक्ष्मी और धर्मलक्ष्मी नामकी स्त्रियोंने, स्वयंवरमें उन्हें अपना पति वरण, कर उनके गलेमें जयमाला डाली थी। ये तीनों एक दूसरीसे बड़ा डाह रखती थीं।

एक दिन, प्रेमियोंके चित्तको चुरानेवाली प्यारी वसन्तऋतुमें राजा अपनी स्त्रियोंको साथ लेकर क्रीड़ा-वनमें विहार करनेके लिये आये। वहाँ आकर राजाने अपनी उन स्त्रियोंके साथ उसी प्रकार जलक्रीड़ा आदि नाना प्रकारकी क्रीड़ाएँ कीं, जैसे हस्तिनियोंसे घिरा हुआ हस्ती प्रेमसे विहार करता फिरता है। उस वनमें एक बड़े ही सुन्दर और पृथ्वीके सिरपर तने हुए छत्रके समान आम्रवृक्षको देखकर राजा उसकी बड़ाई करते हुए कहने लगे,—"हे पृथ्वीके कल्पवृक्ष! मीठे फलोंके देनेवाले आम्रवृक्ष! तेरी छाया संसारको बड़ी प्यारी लगती है, तेरे पत्तोंकी श्रेणी अनुपम मङ्गलकी देनेवाली है, तेरी मंजरियाँ मधुर फलोंको उत्पन्न करनेवाली हैं, तेरा रूप बड़ा ही सुन्दर है, इसीलिये तो हम लोग तुझे सब वृक्षोंमें प्रधान मानते हैं। हे आम्रतरु! तेरा सारा अङ्ग जगत्‌के प्राणियोंके उपकारके ही निमित्त है, इसलिये तुझसे बढ़कर प्रशंसाका पात्र भला और कौन वृक्ष हो सकता है? उन 'नाम बड़े दर्शन थोड़े' के नमूनेसे ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंको धिक्कार है, जो किसीके काम नहीं आते और उन कवियोंको भी धिक्कार है, जो झूठी-सच्ची बातें बनाकर अन्यान्य वृक्षोंके साथ तेरी बराबरी करते या उन्हीं वृक्षोंकी प्रशंसा करते हैं।"

यह कह, राजा अपनी स्त्रियोंके साथ उसी आमके पेड़की शीतल छायामें ठीक उसी तरह बैठ गये, जैसे देवाङ्गनाओंसे घिरे हुए देवता कल्पवृक्षके नीचे बैठकर विश्राम करते हैं। बैठ जानेके बाद नाना प्रकारके वस्त्रों तथा अलङ्कारोंसे सुशोभित, चलते-

फिरते शृंगार-रसके समान, अपनी रूपवती स्त्रियोंकी ओर देख-कर राजा कहने लगे,—"ओह! विधाताकी मेरे ऊपर बड़ी भारी दया है, जो मैंने ऐसी अलौकिक सुन्दरी स्त्रियाँ पायी हैं। इसमें सन्देह नहीं, कि ऐसी स्त्रियाँ संसारमें मुश्किलसे ही किसी घरमें पायी जायेंगी; क्योंकि ताराएँ चन्द्रमाकी ही स्त्रियाँ हैं—और ग्रहोंको ऐसी स्त्रियाँ नसीब कहाँ?"

जैसे वर्षाकालमें जल बढ़ आनेसे नदी अपनी मर्यादा छोड़कर बाहर आ जाती है, वैसे ही ऊपर लिखे विचार मनमें उत्पन्न होते ही राजाका चित्त गर्वसे उछलने लगा। इसी समय उस आमके पेड़की डालपर बैठा हुआ एक तोता, समय विचार कर बोलने-वाले पण्डितकी तरह तुरत बोल उठा,—"भला किस क्षुद्र प्राणीके मनमें गर्व नहीं होता? संसारमें सब अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनते हैं। टिटिहरी भी आकाशको गिरनेसे बचानेके लिये अपनी टाँगें ऊपरकी ओर करके सोती है।"

यह सुनते ही राजाने अपने मनमें सोचा,—"यह तोता तो बड़ा ही ढीठ है। इसने मुझे इस प्रकार गर्व करते देख, मुझे खूब ही लज्जित किया। पर नहीं, यह बात कदापि नहीं हो सकती। तिर्यंचमें इतना ज्ञान कहाँसे आया? यह तो योंही अनायास ऐसी बात बोल गया है।"

राजा अपने मनमें ऐसा विचार कर ही रहे थे, कि इसी समय उस तोतेने फिर एक कहानीसी सुनायी। उसने कहा,—"किसी समय एक हंस एक कुएँके पास आ पहुँचा। उस

कुएँमें एक मेंढक रहता था। उसने हंससे पूछा—भाई! तुम कहाँसे चले आ रहे हो? हंसने कहा—मैं तो अपने सरोवरसे चला आ रहा हूँ। मेंढकने पूछा,—भाई! तुम्हारा सरोवर कितना बड़ा है? हंसने कहा,—बहुत बड़ा। मेंढकने पूछा,—क्या इस कुएँसे भी बड़ा है? हंसने कहा,—हाँ। यह सुनते ही कुएँ का वह मेंढक बड़े क्रोधके साथ हंससे बोला,—रे दुष्ट! तुझे धिक्कार है, जो तू ऐसा गर्व कर रहा है; परन्तु यह तो उचित ही है; क्योंकि तेरी बुद्धि ही इतनी है।"

यह कहानी सुनकर राजाने अपने मनमें सोचा, कि इस कहानीका मतलब यही है, कि यह तोता मुझे कुएँ का मेंढक बता रहा है। निश्चयही, यह शुक ज्ञानी मुनियोंकी भाँति आश्चर्यकी पिटारी है।"

राजा अभी सोच ही रहे थे, कि उस तोतेने फिर एक रूपक बाँधा। उसने कहा,—"अन्धोंमें काने राजाकी तरह मूर्खोंकी मण्डलीमें मुख्य माने जानेवाले गँवई-गाँवके आदमियोंका गँवारूपन भी एक अजब अनोखी चीज़ है। ऐसे गँवार लोग अपने गाँवकोही देवलोक, अपनी झोपड़ीको ही स्वर्गका विमान, अपने भोजनको ही देवभोजन, अपनी वेश-भूषाको ही देव-वेश और स्वयं अपने आपको साक्षात् इन्द्र ही मानते हैं। अपने परिवारवालों-को वे देवराज इन्द्रके खास परिजन ही मान लेते हैं।"

यह सुन, राजाने फिर अपने मनमें विचार किया,—"यह तोता मेरी उपमा गँवई-गाँवके गँवार लोगोंसे देता हुआ मानों

यही कह रहा है, कि मेरी स्त्रियोंसे भी बढ़-बढ़कर सुन्दरियाँ इस दुनियामें हैं।"

राजा अपने मनमें ऐसा विचार करही रहे थे, कि इतनेमें सुन्दर और मनकी बात ताड़नेवाले उस शुकने यह सोचकर, कि अधूरी बात कहनेसे मनुष्यका जी तड़पकर रह जाता है, कहा,—"हे राजा! जबतक तुमने गाङ्गिल-ऋषिकी कन्याको नहीं देखा है, तभीतक तुम अपनी स्त्रियोंको संसार-भरसे बढ़कर मान रहे हो। उस सर्वाङ्गसुन्दरी और सारे संसारको शोभा देनेवाली कन्याकी मूर्त्ति गढ़कर विधाताने भी अपना कमाल दिखला दिया है। जिसने उस कन्याको नहीं देखा, उसका संसारमें जन्म लेना ही वृथा हुआ और जिसने उसे देखकर गलेसे नहीं लगाया, उसका जीवन भी व्यर्थ ही गया। वह बाला जहाँ किसीकी नज़रोंमें समायी, कि बस वह उसीका गुलाम हो जाता है—फिर तो वह किसी और स्त्रीसे कभी मन नहीं लगायेगा; क्योंकि मालती-पुष्पपर बैठनेवाले भ्रमरको दूसरा कोई फूल नहीं भाता। इन्द्रकी पुत्रीके समान उस 'कमलमाला' नामक बालाको देखनेकी यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो मेरे पीछे-पीछे चले आओ।"

यह कह, वह पक्षी उसी समय वहाँसे उड़ चला। यह देख, कौतूहल और उत्सुकतासे भरे हुए राजाने अपने सेवकोंसे कहा,—"प्यारे सेवको! तुम लोग शीघ्रही मेरा पवनवेग नामका घोड़ा तैयार करके ले आओ।" सेवकोंने तुरतही राजाकी आज्ञाका पालन किया और तुरतही उनका कसा-कसाया हुआ घोड़ा लिये

आ पहुँचे। घोड़ेको देखते ही राजा झटपट उसपर जा सवार हुए और उस तोतेके पीछे-पीछे चलने लगे। यद्यपि वहाँ राजाके सिवा और भी बहुतसे आदमी मौजूद थे, तथापि राजाके सिवा और कोई उस तोतेकी बोली नहीं समझ सकता था। इसीलिये राजाको इस तरह एकाएक घोड़ेपर सवार होकर जाते देख, मन्त्री आदिको बड़ी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे,—"यह राजाको एकाएक क्या सूझा, जो इस तरह जल्दीके साथ घोड़ा मँगवा कर चले जा रहे हैं?" यही सोचकर मन्त्री आदि कई राजकर्मचारी बड़ी दूरतक उनके पीछे-पीछे चले गये; पर अन्तमें राजाकी यात्राका कोई ओर-छोर नहीं देख, निराश होकर लौट गये।

आगे-आगे वह तोता उड़ता जाता था और पीछे-पीछे राजा घोड़ा दौड़ाये चले जाते थे। इस तरह जाते-जाते उन लोगोंने पाँच सौ योजनका सफ़र तै कर डाला; पर न जाने किस दैवी मायाके प्रभावसे न तो राजाकोही कुछ श्रम मालूम हुआ, न उनके घोड़ेको। जैसे कर्मोंके प्रभावसे मनुष्यको दूसरा जन्म प्राप्त होता है, वैसेही उस विघ्न-विनाशक पक्षीके आकर्षणसे खिंचे हुए राजा एक बड़े भारी जङ्गलमें आ पहुँचे। सच कहा है, कि सत्पुरुषोंके चित्तमें भी पूर्व भवके अभ्यासके कारण आश्चर्यजनक बातें घर कर लेती हैं—तभी तो बिना स्थान आदिका पूरा पता पायेही, एक पक्षीकी बातपर विश्वास करके राजा मृगध्वज इतनी दूरतक चले आये!

इसी समय उस जङ्गलमें मनोहर किरणोंवाले मेरु-पर्वतके

आगे वह तोता उड़ता चला जाता था और पीछे-पीछे राजा घोड़ा दौड़ाये चले जाते थे।

शिखरके समान, कल्याणकारी श्रीआदिनाथ तीर्थङ्करका सुवर्ण और मणियोंसे जगमगाता हुआ चैत्य ( मन्दिर ) दिखाई दिया। उसी चैत्यके कलशके ऊपर बैठकर वह तोता बड़े मधुर स्वरसे बोला,—"हे राजा! अपना जीवन सफल करनेके लिये तुम श्री आदिदेव परमेश्वरको नमस्कार करो।" यह सुन, उस पक्षीके तुरत ही उड़कर भागनेके डरसे राजाने घोड़ेपर बैठे-ही-बैठे जिनेश्वरको प्रणाम किया। यह देख, उस ज्ञानी तोतेने उनके जीकी बात ताड़ ली और तुरतही उस मन्दिरके अन्दर आकर श्रीऋषभ देव स्वामीको प्रणाम करने लगा। उसे मन्दिरमें जाते देख, राजा भी वैसेही उसके पीछे-पीछे मन्दिरमें आये, जैसे ज्ञानके पीछे-पीछे विवेक चलता है। मन्दिरके अन्दर आनेपर भगवान् श्रीऋषभदेवकी अनुपम मणिमय प्रतिमा देख, मन-ही-मन परम आनन्दित हो, राजाने मधुर वचनोंसे कहना आरम्भ किया,—

"हे भगवन्! मेरे मनमें इस बातका उत्साह तो बहुत है, कि तुम्हारी स्तुति करूँ; परन्तु मैं स्तुति करनेमें समर्थ नहीं हूँ। इसी लिये एक ओर तुम्हारी भक्ति और दूसरी ओर स्तुति करनेकी अशक्ति मेरे चित्तको चञ्चल कर रही है, तोभी जैसे निर्बल पक्षी अपनी सामर्थ्यके अनुसार आकाशमें उड़ता है, वैसे ही मैं भी यथाशक्ति तुम्हारी स्तुति करता हूँ।

"हे नाथ! अमितदान करनेवाले तुम्हारे साथ भला मित-दाता कल्पवृक्षकी उपमा कैसे दी जा सकती है? तुम तो अनुप-मेय हो। नाथ! यह तुम्हारी कैसी अद्भुत रीति है, कि तुम न

तो किसीपर प्रसन्न होते हो, न किसीको कुछ देते हो, तोभी सब लोग तुम्हारी आराधना करते हैं। तुम निर्मम हो—ममतासे परे हो—तोभी इस जगत्‌के रक्षक हो और निःसङ्ग होते हुए भी इस जगत्‌के प्रभु हो। तुम लोकोत्तर रूपवान होते हुए भी निराकार हो। हे भगवन्! ऐसे तुमको मैं नमस्कार करता हूँ।"

राजाकी मधुर और ऊँचे स्वरसे की हुई वह स्तुति उसी मन्दिरके पासवाले आश्रममें रहनेवाले गाङ्गिल-ऋषिके कानोंमें भी पड़ी। यह सुनते ही जटा-वल्कल-धारी ऋषि किसी कामके बहाने अरिहन्त महाराजके मन्दिरमें आये। वहाँ पहुँचकर प्रशस्त विद्यासे भरपूर हृदयवाले वे ऋषि, ऋषभदेव स्वामीकी भक्ति-पूर्वक वन्दना कर, मनोहर, दोषरहित और तत्काल रचे हुए पद्यों-में जिनेश्वरकी इस प्रकार स्तुति करने लगे:—

"तीनों लोकोंका उपकार करनेमें समर्थ, अनन्त शोभाओंके स्वामी, हे त्रिजगदेक-नाथ! तुम्हारी जय हो। नाभिराजाके ऊँचे कुलरूपी कमलवनमें विचरनेवाले हंसके समान, मरुदेवा माताकी कोखरूपी सरोवरके राजहंसके समान, हे त्रिभुवन-जनवन्दनीय! तुम्हारी जय हो। जो तीनों लोकोंके मनुष्योंके मनरूपी कोकको (चकवेको) शोक-रहित करनेवाले सूर्यके समान हैं; जो अन्यान्य देवताओंके गर्वको खर्व कर निर्मल, निरुपम और निःसीम महिमा-रूपिणी कमलाके विलास करने योग्य कमलाकरके समान हो रहे हैं, आत्मिक स्वभावके रस और ज्ञान-दर्शन-जनित भक्तिकी सम्मिलित प्रेरणाके कारण जिनके पद्-

कमलोंपर देवता, किन्नर और नरोंके राजा अपने मणिमय मुकुटों-वाले मस्तकको झुकाते हैं, जिन्होंने रागद्वेष आदि सब विकारों-का ध्वंस कर डाला है, उन तीर्थङ्कर देवताकी जय हो। संसार-समुद्रमें डूबते हुए मनुष्योंको पार उतारनेवाले जहाज़के समान, सिद्धि-वधूके स्वामी अजर, अमर, अचर, अभय, अपर, अपर-म्पर, परमेश्वर, परमयोगीश्वर, हे युगादिजिनेश्वर! मैं तुम्हें श्रद्धा-पूर्वक नमस्कार करता हूँ।"

इस प्रकार हर्षसे प्रफुल्लित चित्तके साथ मधुर भाषामें श्री जिनेश्वरकी स्तुति करनेके बाद वे ऋषि सरल चित्तसे राजासे बोले,—"हे ऋतुध्वज राजाके कुलकी ध्वजाके समान मृगध्वज राजा! आज अकस्मात् मेरे आश्रममें आकर तुम मेरे अतिथि हुए हो, इसलिये मैं बड़े आनन्दके साथ तुम्हारा उचित आतिथ्य-सत्कार करना चाहता हूँ; क्योंकि बड़े भाग्यसे ही तुम्हारे जैसे अतिथियोंका आगमन होता है।"

यह सुन, राजा मन-ही-मन सोचने लगे,—"ये महर्षि कौन हैं? ये क्यों इस प्रकार आग्रहके साथ मुझे अपने आश्रममें लिये जा रहे हैं? मेरा नाम-पता इन्हें कैसे मालूम हो गया?" मन-ही-मन यही सब सोचते-विचारते हुए राजा शङ्का-भरे चित्तके साथ ऋषिके पीछे-पीछे चलकर उनके आश्रममें आये। कारण, उत्तम पुरुषोंसे किसीका अनुरोध टालते नहीं बनता।

राजाको अपने आश्रममें बड़े आदरसे पधराकर उन महाते-जस्वी ऋषिने बड़े हर्षसे कहा,—"हे राजन्! तुमने यहाँ आकर

मुझे बड़ा कृतार्थ किया। अब तुम मेरे कुलके अलङ्कारके समान, संसारके जीव-मात्रके नेत्रोंको आनन्द देनेवाली मेरी प्राणोंसे भी अधिक प्यारी कमलमाला नामकी कन्याका पाणिग्रहण करो।"

"जो रोगीको भावे, वही वैद्य बतलावे," के अनुसार राजाने ऋषिकी यह प्रार्थना तुरत स्वीकार कर ली। तब ऋषिने अपनी परम रूपवती, युवती और गुणवती कन्या कमलमालाको बुला-कर, उसका हाथ राजाको पकड़ा दिया। कहा है, कि शुभकार्य-में विलम्ब नहीं करना चाहिये, इसीलिये विवाहकी यह मङ्गल-क्रिया झटपट सम्पन्न कर दी गयी।

राजा परम सुन्दरी ऋषि-कन्याको देखकर बड़े ही प्रसन्न हुए। वह वल्कलके वस्त्र पहने हुई थी, तोभी बड़ी सुन्दरी मालूम पड़ती थी। कमलमालाके प्रति राजहंसकी प्रीति होना, तो ठीक ही है। उस समय हर्षसे भरे हुए हृदयके साथ तपस्वियोंने विवाहके सारे मङ्गलाचार किये और स्वयं गाङ्गिल ऋषिने अपने हाथों ब्याहकी सब रस्में पूरी कीं। इस प्रकार राजाके साथ अपनी कन्याका विवाह करनेके बाद, ऋषिने कंगन छुड़ाते समय उन्हें पुत्र-प्राप्तिके निमित्त एक मन्त्र बतलाया। मुनिके पास दहेज़-में देने योग्य और कौनसी चीज़ थी? विवाह-सम्बन्धी सब कार्य हो चुकनेपर राजाने ऋषिसे कहा,—"मुनिवर! मैं राज्य-को एकदम सूना छोड़कर बड़ी जल्दीमें यहाँ चला आया हूँ, इस लिये अब आप शीघ्रही मेरे यहाँसे प्रस्थान करनेका प्रबन्ध कर दीजिये।"

ऋषि,—"हम नंगे फिरनेवाले मुनियोंके पास रखाही क्या है, जो तुम्हारी विदाईके लिये विशेष तैयारी करेंगे? तुम्हारे इन राजसी वस्त्रों और अपने वल्कलके वस्त्रोंको देखकर मेरी पुत्री मन-ही-मन उदास हो रही है। इसके सिवा मेरी यह कन्या लड़कपनसे ही तपस्विनियोंकी तरह वृक्षोंका सिञ्चन ही करती रही है, इसलिये बड़ी ही भोली-भाली है। तथापि इसके चित्तमें तुम्हारे प्रति अगाध स्नेह भरा हुआ है; क्योंकि यह भली भाँति जानती है, कि स्त्रीके लिये स्वामी ही सब कुछ है। अतएव तुम ऐसा करना, जिसमें इसे अपनी सपत्नियोंके हाथों दुःख न उठाना पड़े।"

राजा,—"महर्षे! दुःखकी क्या बात है? मैं इसे ऐसे आदरसे रखूँगा, कि इसे कभी दुःख-कष्टका नाम भी मालूम नहीं होने पायेगा। अपने वचनोंकी रक्षा मैं सदैव करता रहूँगा।"

इस प्रकार प्रेमके साथ ऋषिके संग बातें करनेके बाद चतुर राजाने तपस्विनियोंकी ओर देखते हुए कहा,—"यहाँ तो पहनने योग्य वस्त्रोंका भी टोटा है; पर अपने नगरमें पहुँचकर मैं आपकी पुत्रीके सभी मनोरथ पूरे कर दूँगा।"

यह सुनकर ऋषिको बड़ा खेद हुआ। उन्होंने उदासीके साथ कहा,—"ओह! मुझे धिक्कार है, जो मैं निर्धनताके कारण अपनी पुत्रीके पहनने योग्य वस्त्रोंका भी बन्दोबस्त नहीं कर सका। यह कहते-कहते खेदके मारे उनकी आँखोंमें आँसू भर आये। इत-नेमें पासवाले आमके पेड़से बहुतसे गहने और वस्त्र वैसे ही टपक

पड़े, जैसे बादलोंसे पानीकी बूँदें टपकती हैं। यह देख, सबको बड़ा अचम्भा हुआ और वे लोग सोचने लगे, कि यह लड़की बड़ी ही सौभाग्यवती है।

आजतक फलवाले वृक्षोंसे फल और बादलोंसे पानी ही बरसते देखा था, पर आसमानसे वस्त्राभूषणोंका बरसना आजही देखनेमें आया! सच है, पुण्यके योगसे क्या नहीं हो जाता? पुण्यके बलसे बहुतसे आश्चर्यमें डालनेवाले काम हो जाते हैं। कहा भी है, कि—

"पुण्यैः सम्भाव्यते पुंसामसम्भाव्यमपि क्षितौ।
तेरुर्मेरुसमाः शैलाः किं न रामस्य वारिधौ॥"

*अर्थात्—पुण्यके योगसे जगत् में अनहोनी बातें भी हो जाती हैं। क्या रामचन्द्रके लिये मेरुके समान बड़े-बड़े पर्वत भी समुद्रमें नहीं तिर गये थे?"*

इसके बाद राजा अत्यन्त हर्षित चित्तसे ऋषि और अपनी पत्नीके साथ-साथ फिर उस मन्दिरके भीतर गये और प्रभुकी स्तुति करते हुए बोले,—"हे प्रभो! मैं फिर परम उत्सुक होकर आपके दर्शन करने आया हूँ। यों तो आपकी यह मूर्त्ति मेरे हृदयमें पत्थरपर खिंची हुई लकीरकी तरह अमिट भावसे अङ्कित हो गयी है।" यह कह, जिनेश्वर भगवान्‌के चरणोंमें नमस्कार कर, बाहर आकर राजाने ऋषिसे पूछा,—"महात्मन्। अब कृपा कर आप मुझे यहाँसे जानेकी राह बतला दीजिये।"

ऋषिने कहा,—"रास्ते आदिकी बात मुझे नहीं मालूम।" राजाने कहा,—"तो फिर आपने मेरे नाम आदिका कैसे पता पा लिया था?"

ऋषि बोले,—"इसका हाल यों है, सुनो! एक दिन अपनी इस परम रूपवती कन्याको युवावस्थाको प्राप्त होते देख, मैं अपने मनमें विचार करने लगा, कि मैं इसे किस पुरुषको सौंपूँ, जो रूप, वयस और गुणोंमें ठीक इसीके समान हो? इसी समय आमके पेड़पर बैठा हुआ एक तोता बोला,—'मुनिजी महाराज! आप चिन्ता न करें, मैं आज ऋतुध्वज राजाके पुत्र मृगध्वज राजाको अभी इस मन्दिरमें बुलाये लाता हूँ। जैसे कल्प-लतिका कल्पवृक्षके ही योग्य होती है, वैसेही यह कन्या भी उन्हींके योग्य है। आप इसमें किसी तरहका सन्देह न कीजिये।' यह कह, वह तोता उड़ गया और उसके बाद तुम्हें यहाँ लेकर आया। उसीके कहे अनुसार मैंने उचित रीतिके अनुसार अपनी कन्याका विवाह तुम्हारे साथ कर दिया। इसके सिवा मुझे और कुछ भी नहीं मालूम।"

यह सुन, राजा बड़ी चिन्तामें पड़ गये। इतनेमें मौक़ा देख-कर वह तोता बोल उठा,—"हे राजा! आप घबरायें नहीं, मेरे पीछे-पीछे चले आयें, मैं आपको रास्ता दिखलाऊँगा। यद्यपि मैं पक्षी हूँ, तथापि मैं यह जानता हूँ, कि अपने आश्रयमें रहने-वाले—अपने भरोसेपर रहनेवाले—मनुष्यकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि यदि कोई नीच पुरुष भी अपनी शरणमें आये,

तोभी उसे नहीं त्याग देना चाहिये ; फिर आप तो बहुत बड़े आदमी हैं—आपके सम्बन्धमें तो कहनाही क्या है? देखिये, चन्द्रमा अपनी गोदमें आ पड़नेवाले शशक-बालकको त्याग नहीं करता। आप आर्य-पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं, इसलिये मुझ नीच पक्षीको कदापि भूल न जायेंगे। मैं अति क्षुद्र हूँ, तोभी मैं आपको सदा याद रखूँगा।"

यह सुन, आश्चर्यमें डूबे हुए राजा, ऋषिकी आज्ञा ले, स्त्रीके साथही घोड़े पर सवार हुए और उस तोतेके बतलाये हुए रास्ते पर उसके पीछे-पीछे चलने लगे। क्रमशः जब क्षितिप्रतिष्ठित नगर निकट आगया और दूरसे ही कुछ कुछ दिखाई देने लगा, तब एकाएक वह तोता एक वृक्षपर जाकर चुपचाप बैठ गया। उसे इस तरह चुप्पी साधकर बैठते देख, राजाने सन्देहमें पड़कर बड़ी घबराहटके साथ पूछा,—"क्यों भाई! यद्यपि नगरके महलों और किलोंके ऊँचे-ऊँचे शिखर दिखाई दे रहे हैं, तथापि अभी हम उससे बहुत दूर हैं। फिर तुम इस तरह रूठे हुए आदमीकी तरह चुपचाप क्यों बैठ गये?"

तोतेने कहा,—"मेरे यहाँ चुपचाप बैठ रहनेका बड़ा प्रबल कारण है। बुद्धिमान् पुरुषोंका कोई काम बेमतलब नहीं होता।"

यह सुन, राजाने उससे वह कारण पूछा। शुक पक्षीने कहा,—"हे महाराज! चन्द्रपुरीके राजा चन्द्रशेखरकी बहन चन्द्रावती आपकी स्त्री है। आप उसे बहुत प्यार करते हैं। पर वह ऊपरसे चाहे जितनी-चिकनी चुपड़ी बातें करे, लेकिन उसके जीमें

खुटाई भरी हुई है। वह गायके रूपमें सिंहिनी है। पानीकी तरह स्त्रियोंकी मति-गति भी बड़ी चञ्चल होती है। आपको राज्यसे दूर गया जानकर, आपसे फिरन्ट रहनेवाली चन्द्रावतीने आपको धोखा देनेके इरादेसे अपने भाईको आपका राज्य हड़प कर जानेके लिये बुलाया है। अबलाएँ अपना मतलब साधनेके लिये छलकाही सहारा लेती हैं। छल ही उनका सबसे बड़ा बल होता है। ख़ैर, मुफ्तमें मिलता हुआ राज्य भला कौन छोड़ता है? इसी लिये अपनी बहनकी बात मानकर राजा चन्द्रशेखर अपनी चतुरङ्गिणी सेना लिये हुए आपके नगरके पास आ पहुँचा। यह देख, नगरके भीतर रहनेवाले आपके वीर सैनिकोंने नगरके तमाम दरवाज़े बन्द कर दिये। तब सर्प जैसे चारों ओरसे ख़ज़ानेको घेरकर बैठा रहता है, वैसेही चन्द्रशेखरने आपके नगरपर घेरा डाल दिया। आपके वीर सिपाही इस समय भी बड़ी वीरतासे उसके साथ युद्ध कर रहे हैं; पर बिना राजाके उनकी जयकी आशा नहीं है। लोग कहते भी हैं, कि बिना सरदारके फ़ौज मारी जाती है। हे राजन्! आपके नगरकी इस समय ऐसी ही हालत हो रही है। ऐसी आफ़तमें आप किस तरह नगरके भीतर घुसेंगे, यही सोचकर मैं यहाँ बैठ गया हूं।"

तोतेके मुंहसे ऐसी दिलको दहला देनेवाली बात सुनकर राजा मन-ही-मन दुःखित होकर सोचने लगे,—"धिक्कार है, उन दुष्टाचारिणी स्त्रियोंको, जिनके मनकी कुछ थाह नहीं मिलती।

ओह, उस दुष्ट चन्द्रशेखरकी इतनी मजाल! उसके दिलमें ज़रा भी भय-शङ्का नहीं हुई! अपने स्वामीके राज्यको चौपट करा देनेवाली इस स्त्रीकी तृष्णा तो देखो। ओह, कैसा घोर अन्याय हुं! पर इसमें बेचारे चन्द्रशेखरका दोष ही क्या है? सूने राज्यको कौन नहीं अपने हाथमें कर लेना चाहता? बिना रखवालेके खेतको सूअर चरही जाते हैं। असलमें मैं ही अपराधी हूं, जो दूसरेके बहकावेमें पड़कर बिना सोचे-विचारे राज्यको छोड़कर चला गया। नीति भी तो कहती है, कि बिना बिचारे जो करे, सो पाछे पछिताय। मैंने उस स्त्रीको जो इतना प्यार किया, उसपर इतना विश्वास किया, वह भी अविचारका ही कार्य था। फिर मुझे विपत्ति क्यों नहीं झेलनी पड़ेगी? लोग कहा करते हैं, कि मनुष्य यदि कोई काम करे, किसीपर विश्वास करे, किसीको धरोहर सौंपे, किसीको प्यार करे, किसीसे कुछ बोले, किसीको कुछ दे, या किसीसे कुछ ले, तो पहले अच्छी तरह उसके फलाफलका विचार कर ले। नहीं तो पीछे पछतानाही हाथ आता है। कहा भी है, कि—

> सगुणमपगुणं वा कुर्वता कार्यजातम्।
> परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन ॥
> अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्तेः।
> भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः ॥

अर्थात्—कोई भला या बुरा काम करनेके पहले, बुद्धिमान् मनुष्योंको उसके परिणामका विचार कर लेना

*चाहिये ; क्योंकि जो बिना सोचे-समझे झटपट कोई काम कर बैठता है, उसका परिणाम हृदयको शेलकी तरह दुःख देनेवाली विपत्ति ही है।"*

इस प्रकार अपने राज्यका नाश उपस्थित देख, राजा मन-ही-मन पछताने और हाथ मलने लगे। यह देख, उस तोतेने कहा,-"राजन्! अब व्यर्थ पछताने और हाथ मलनेसे क्या होगा? मेरी बतलायी हुई बातसे आपकी कभी बुराई नहीं हो सकती। बुद्धिमान् वैद्यकी बतलायी हुई औषधिसे बीमारी बढ़ती नहीं, घटती ही है। इसलिये हे महाराज! आप यह न जानें, कि आपका राज्य आपके हाथसे चला ही जायेगा। अभी आपको बहुत दिनोंतक राज्यलक्ष्मीका सुख भोगना है।"

जैसे विद्वान् ज्योतिषीकी बातपर मनमें झट विश्वास पैदा हो जाता है, वैसेही उस तोतेकी बात सुनकर राजाको धैर्य हुआ और वे समझ गये, कि उनका राज्य नष्ट न होगा। पर उनका चित्त अभी पूरी तरह ठिकाने हुआ भी नहीं था, कि इसी समय राजाने देखा, कि हथियारोंसे अच्छी तरह सजी हुई चतुरंगिणी सेना उन्हींकी ओर चली आरही है। यह देख, राजाने सोचा, कि मेरे राज्यको जीतकर यह सेना, मुझे यहाँतक आया जान, निश्चयही मेरा वध करनेके लिये चली आरही है। अब मैं अकेला किस तरह उसके साथ युद्ध करूँ और इस स्त्रीकी रक्षा करूंगा? अब मैं क्या करूँ और क्या नहीं करूँ?

राजा इसी सोचमें पड़े हुए थोड़ी देरके लिये पत्थरकी मूर्त्तिकी

तरह चुपचाप खड़े रह गये। इसी समय उन्होंने बड़े विस्मयके साथ देखा, कि चारों ओरसे बहुतसे सैनिकोंने उन्हें घेर लिया और "महाराज! आपकी जय हो—ईश्वर आपको दीर्घजीवी बनाये। कहिये, सेवकोंको क्या आज्ञा होती है? आज बड़े भाग्यसे हमने आपके दर्शन पाये हैं। कृपा कर अपने पुत्रके समान हम सैनिकों-को शीघ्र आज्ञा दें, हम आपके लिये प्राण समर्पण करनेको तैयार हैं—"ऐसा कहते हुए उनके चरणोंमें सिर झुका दिया। ये सैनिक शत्रुओंके नहीं, बल्कि राजा मृगध्वजके अपनेही सैनिक थे। इसी लिये एकही साथ हर्ष और विस्मयमें पड़कर राजाने उन सैनिकोंसे पूछा,—"तुम लोग यहाँ कैसे चले आये?"

सैनिकोंने कहा,—"हमने दूरसे ही आपको यहाँ आया हुआ देख लिया; पर हम इतनी जल्दी यहाँतक कैसे चले आये, यह हमें नहीं मालूम। महाराज! पुण्य-योगसेही यह अद्भुत घटना हुई है।"

इस प्रकारकी अद्भुत बात सुनकर राजाको बड़ा विस्मय हुआ। वे अपने मन-ही-मन विचार करने लगे,—"ओह, उस तोतेकी बातें तो शास्त्रकी ही भाँति सत्य होती हैं। उसने मेरा हर तरहसे उपकार किया। अब मैं इसके बदलेमें उसकी कौन सी भलाई करूँ? उसका कौनसा मनोरथ पूरा करूँ? मैं चाहे उसकी लाख भलाई करूँ, तोभी उसके उपकारोंका बदला मुझसे चुकाया नहीं जायेगा; क्योंकि नीतिज्ञ पुरुषोंने कहा है, कि मनुष्य लाखों तरहसे उपकारका बदला चुकाना चाहे; पर

पहले-पहल जो उपकार करता है, उससे उऋण नहीं हो सकता; क्योंकि प्रत्युपकार करनेवाला कारण पाकर उसकी भलाई करता है और वह अकारणही—निःस्वार्थ भावसे—उसका उपकार करता है।"

मन-ही-मन ऐसा विचार करते हुए राजाने उस तोतेको देखनेके लिये ज्योंही ऊपरकी ओर दृष्टि की, त्योंही देखा, कि वह तो लापता है। यह देख, राजाने सोचा,—"मालूम होता है, कि वह शुक इसी डरसे भाग गया है, कि कहीं मैं उसके उपकारोंका कुछ बदला न देने लगूँ; क्योंकि उत्तम पुरुष केवल दूसरोंका उपकार करनाही पसन्द करते हैं, उस उपकारका बदला लेना नहीं चाहते। वे तो किसीका उपकार करके झट वहाँसे दूर हट जाते हैं। यदि भाग्यसे ऐसा ज्ञानी और निरन्तर परोपकारी सहायक मिल जाये, तो इस संसारमें कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं है। फिर तो सारे काम बड़ी आसानीसे बन जा सकते हैं। ऐसे उपकारी मित्र मुश्किलसेही मिलते हैं। यदि मिलते भी हैं, तो अभागेकी सम्पत्तिकी भाँति देरतक नहीं ठहरते। न मालूम वह ज्ञानी शुक कौन था? वह मेरा हितैषी न मालूम किधरसे आया और कहाँ चला गया? उस समय वृक्षके ऊपरसे जो वस्त्रालङ्कार गिरे थे, वे क्योंकर गिरे? मेरी सेनाही ठीक समयपर मेरे पास कैसे पहुँच गयी? इन सारे संशयोंका नाश क्योंकर होगा? इस अज्ञानकी अँधेरी गुफामें ज्ञानका दीपक कब प्रकाश फैलायेगा?"

इसके बाद उन सैनिकोंके साथ-साथ आये हुए मंत्री आदिने

जब राजासे सब हाल पूछा, तब राजाने उन्हें उस शुककी सारी कहानी कह सुनायी। उसे सुनकर वे बड़े आश्चर्यमें पड़कर कहने लगे,—"राजन्! आप धैर्य रखें, शीघ्रही वह शुक फिर आपसे आ मिलेगा; क्योंकि जो किसीकी भलाई चाहनेवाला होता है, वह उसे कभी भूलता नहीं है। किसी ज्ञानी पुरुषसे पूछनेपर इन सारे भेदोंका भण्डाफोड़ होही जायेगा; क्योंकि ज्ञानियोंसे कुछ छिपा हुआ नहीं रहता। अब इस समय तो आप इन सब चिन्ताओंको चित्तसे दूर कर नगरमें पधारें और उसे अपने चरणोंकी धूलसे पवित्र करें। सदा आपके दर्शनोंके लिये उत्सुक रहनेवाले नगर-निवासियोंको दर्शन देकर आनन्दित कीजिये।"

उनकी इसी बातको उचित समझ कर राजाने उनकी बात मान ली; क्योंकि उचित बात माननी ही पड़ती है।

इसके बाद तरह-तरहके बाजोंके शब्दसे दसों दिशाओंको गुँजाते हुए राजा तुरतही अपने नगरमें आ पहुंचे। उन्हें आते देख, चन्द्रशेखर मारे डरके काँप उठा। बादको उसने युक्तिसे काम निकालनेका विचार किया। उसने एक भाटको कुछ द्रव्य देकर राजा मृगध्वजके पास भेजा। उसने राजाके पास पहुँचकर कहा,—"महाराज! श्रेष्ठ बुद्धिको धारण करनेवाले आपके चरण-कमलोंमें मेरे स्वामीने यह निवेदन किया है, कि हे पृथिवी-पति! आप किसी धूर्त्तकी बातोंमें पड़कर नगरसे बाहर चले गये, इसीलिये मैं इसकी रक्षा करनेके निमित्त अपनी सेना लिये हुए

यहाँ चला आया था ; पर आपके अज्ञानी सैनिकोंने मेरा मतलब न समझकर मुझे शत्रु जान, मेरे साथ युद्ध करना आरम्भ कर दिया। इस युद्धमें मुझे बड़ी हानि उठानी पड़ी। कहाँ तो मैं भलाई करने आया और व्यर्थ ही बुरा बनकर मार खायी। ऐसे सेवक भला किस कामके, जिनके मन स्वामीके साथ मिले हुए न हों ? नीतिज्ञोंने कहा है, कि "यदि पिताके कार्यमें पुत्र, गुरुके कार्यमें शिष्य, स्वामीके कार्यमें सेवक और पतिके कार्यमें पत्नी अपने प्राण भी दे दे, तोभी उचितही है।"

भाटके मुँहसे यह बातें सुन, सन्देहके बहुतसे कारण मौजूद रहते हुए भी, राजाने अपनी उदारताके कारण उसकी बातोंको सच ही मान लिया और चन्द्रशेखरके सामने आनेपर उसका उचित आदर किया। यह देख, सब लोग राजाकी बुद्धिमत्ता, उदारता और गम्भीरताकी सौ-सौ मुँहसे बड़ाई करने लगे। इसके बाद जैसे लक्ष्मीके साथ कृष्ण चलते हैं, वैसेही राजा मृगध्वज भी अपनी स्त्री कमलमालाके साथ बड़ी धूमधामसे अपने नगरमें आये। उस समय नगर-निवासियोंने जय-जयकी घोर-गम्भीर ध्वनि करते हुए राजा और रानीपर फूलों और मोतियोंके ढेर न्यौछावर किये। द्वितीयाके बाल-चन्द्रमाके समान उस सुन्दरी कमलमालाको राजाने अपनी सब रानियोंमें प्रधान बनाया। वही उनकी पटरानी हो गयी।

## दूसरा परिच्छेद

रण-भूमिमें जय प्राप्त करनेमें जैसे राजाही मुख्य हेतु होता है और सैनिक आदि केवल सहायक होते हैं, वैसे ही पुत्र-प्राप्तिमें धर्मही मुख्य कारण होता है और मन्त्र आदि केवल उसके सहायक होते हैं। यही सोचकर राजाने एक दिन पुत्र-प्राप्तिके निमित्त गाङ्गिल ऋषिके बतलाये हुए मन्त्रका विधि-पूर्वक जाप करना आरम्भ किया। उस मन्त्रके प्रभावसे राजाकी सभी रानियोंके एक-एक पुत्र हुआ। कहते हैं, कि कारणसेही कार्यकी उत्पत्ति होती है। इसीसे यद्यपि राजाने अपनी उदारताके कारण रानी चन्द्रावतीका मान नहीं घटाया था, तथापि पहले किये हुए पति-द्रोहके कारण रानी चन्द्रावतीकी गोद नहीं भरी।

एक दिन रानी कमलमालाने रातको सपनेमें एक बड़ी ही विचित्र दैवी वाणीसी सुनी। बस तुरंतही उसकी नींद टूट गयी और उसने अपने स्वामीके पास आकर कहा,—"प्राणेश! आज चलती रातको मैंने सपना देखा, कि मैं उसी आश्रमके पासवाले

श्रीऋषभदेवके मन्दिरमें जा पहुँची हूँ। मेरे आतेही प्रथम तीर्थ-ङ्करने प्रसन्न होकर मुझसे कहा,—पुत्री ! तू इस तोतेको अपने साथ लेती जा, पीछे मैं तुझे एक हंस दूंगा। यह कहकर उन्होंने एक बड़ा ही सुन्दर तोता मेरे हाथमें दे दिया। उस समय मुझे ऐसा आनन्द हुआ, मानों मुझे कोई बड़ी भारी सम्पत्ति मिल गयी हो। मारे हर्षके मुझे फिर नींद नहीं आयी और आपके पास यह हाल सुनानेके लिये चली आयी। प्राणेश्वर ! क्या इस स्वप्नके प्रभावसे हमें कोई बहुत बड़ी सम्पत्ति मिलेगी ?"

कमलमालाके इस स्वप्नका हाल सुनतेही राजाके अङ्ग-अङ्गमें पुलकावली छा गयी ; क्योंकि वे स्वप्नका विचार भली भाँति करना जानते थे। उन्होंने उसी समय मन-ही-मन उस स्वप्नका विचार कर रानी कमलमालासे कहा,—"ऐसा स्वप्न कोई विरला ही भाग्यवान् देखता है। इसका फल बड़ा ही शुभ है। इसका मतलब यह है, कि तुम्हें दिव्य रूप और दिव्य स्वभाववाले, सूर्य-चन्द्रमाके समान दो पुत्र प्राप्त होंगे। हे सुन्दर नेत्रोंवाली ! जैसे पक्षियोंमें तोता और हंस श्रेष्ठ माने जाते हैं, वैसे ही तुम्हारे वे दोनों पुत्र भी सब राजाओंमें श्रेष्ठ होंगे। हे प्यारी ! तुम्हारे वे पुत्र परमेश्वरके ही दिये हुए होनेके कारण अन्तमें परमेश्वरके ही समान होंगे। इसमें ज़रा भी सन्देह न करना।"

राजाकी यह बात सुन, कमलमाला बड़ीही आनन्दित हुई। इसके बादही जैसे रत्नगर्भा पृथ्वी अपने उदरमें अच्छे रत्नको धारण करती है और आकाश सूर्यको धारण करता है, वैसेही

रानी कमलमालाने गर्भको धारण किया। क्रमशः वह गर्भ रानीकी सभी इच्छाओंकी तत्काल पूर्त्ति करनेमें राजाकी तत्परताके करण, उसी प्रकार बढ़ने लगा, जैसे उत्तम रसके द्वारा सिञ्चन करनेसे कल्पवृक्षका अङ्कुर धीरे-धीरे वृद्धिको प्राप्त होता है। इसी तरह नौ महीने बीत जानेपर दसवें महीनेमें रानीने ठीक उसी तरह एक शुभ लक्षणोंसे युक्त पुत्रको जन्म दिया, जैसे पूर्व-दिशा पूर्णिमाके चन्द्रमाको जन्म देती है। पटरानीके पुत्र हुआ, यह जानकर राजाने अन्य रानियोंके पुत्र-जन्मके समयसे अधिक धूम-धामके साथ उत्सव किये; क्योंकि राजाओंकी यह रीति है, वे पटरानियोंको सब रानियोंसे अधिक मान देते हैं।

पुत्र-जन्मके तीसरे दिन सूर्य-चन्द्र-दर्शनका संस्कार बड़ी धूम-धामके साथ किया गया। छठे दिन षष्ठिजागरण नामक उत्सव हुआ। इन उत्सवोंकी तैयारी देख-देख कर राजा फूले अङ्ग नहीं समाते थे। बारहवें दिन राजाने बड़े उत्सव, उत्साह और उल्लासके साथ पुत्रका नामकरण किया और स्वप्नके अनुसार ही उसका नाम शुकराज रखा।

क्रमशः वह बालक बढ़ने लगा। देखते-देखते पाँच वर्षका समय निकल गया। जैसे पाँचवें वर्षमें आमका पेड़ फल देने लगता है, वैसेही वह बालक भी पाँच वर्षका होकर सबको सुखी करने लगा। अपनी अद्भुत सुन्दरताके आगे इन्द्रके पुत्र जयन्तको भी लज्जित करनेवाले उस नन्हेसे बालकमें एक-एक करके सब अच्छे-अच्छे गुण इकट्ठे होने लगे। अपनी वाणीकी चतुरता

और मधुरतासे वह बालक सयानोंके भी मन मोहने और चित्त लुभाने लगा।

एक दिन वसन्त-ऋतुके ज़मानेमें राजा मृगध्वज अपनी प्यारी रानी कमलमाला तथा कुमार शुकराजको साथ लिये हुए तरह-तरहके सुगन्धित फूलोंकी खुशबूसे भरे हुए अपने बागीचेमें आये और आज भी उसी आमके पेड़के नीचे बैठ गये। वहाँ बैठतेही राजाको सब पिछली बातें याद हो आयीं और उन्होंने बड़े प्रेमसे रानीसे कहना शुरू किया,—"हे प्रिये! यह वही आमका पेड़ है, जिसके नीचे बैठे हुए मैंने उस तोतेके मुँहसे तुम्हारे नामका, तुम्हारी सुन्दरताका और तुम्हारा पूरा-पूरा पता पाया था। उसीके कहे अनुसार मैं यहाँसे तुरत उठकर चल पड़ा और तुम्हारे साथ व्याह करके ही लौटा। सच जानो प्यारी! तुमसे विवाह करके मैंने अपना जीवन सफल कर लिया।"

राजाकी यह बात पूरी भी नहीं होने पायी थी, कि उनकी गोदमें बैठा हुआ नन्हाँसा बच्चा, एकाएक बेहोश होकर, जड़से उखाड़े हुए वृक्षकी तरह, भूमिपर गिर पड़ा। यह देखतेही राजा और रानीके होश उड़ गये और वे दोनों व्याकुल होकर बड़े ज़ोरसे रोने-चिल्लाने और छाती पीटने लगे। "क्या हुआ? क्या हुआ?" कहते हुए बहुतसे आदमी वहाँ आकर जमा हो गये। वहाँका दृश्य देखकर सबको बड़ा भारी खेद हुआ; क्योंकि बड़ोंके सुख-दुःखको सब लोग अपना ही सुख-दुःख समझते हैं। बड़ी देर-तक शीतल चन्दनसे सींचे हुए केलेके पत्तेसे हवा करने और अन्य

अनेक प्रकारके उपचार करनेके बाद राजकुमारको थोड़ा-बहुत होश हुआ और उसने आँखें खोल दीं ; पर सूखे हुए चेहरेपर पहलेकी सी प्रसन्नता नहीं दिखाई दी। उसने चौंककर चारों ओर देखना तो शुरू कर दिया ; पर लाख चेष्टा करनेपर भी उसके मुँहसे बोली नहीं निकली। जैसे छद्मस्थ अवस्थामें तीर्थङ्कर मौन रहते हैं, वैसेही कुमार भी मौन [illegible] र यह देख, राज-दम्पती-को बड़ी घबराहट हुई। उन्होंने सोचा,—"दैवयोगसे पुत्रकी मूर्च्छा तो टूट गयी ; पर इसका मुँह क्यों बन्द है? बोली क्यों नहीं निकलती? यह अवश्यही हमलोगोंका बड़ा भारी दुर्भाग्य है।" यही सोचते हुए वे लोग उस लड़केको लिये हुए नगरमें चले आये।

इसके बाद राजाने पुत्रका कण्ठ खुलवानेकी बड़ी-बड़ी तरकीबें कीं ; पर वे सब ठीक उसी तरह बेकार गयीं, जैसे दुर्जन-पर किया हुआ उपकार कभी सफल नहीं होता। इसी तरह एक-दो दिन नहीं, छः महीनेका समय निकल गया। इस अर्सेके बीचमें न तो यही मालूम हुआ, कि उसे एकाएक क्या हो गया है और न वह एक शब्द बोला ही। राजकुमारकी इस कठिन बीमारीका कोई कारण नहीं मालूम पड़ा। सब लोग यही कहने लगे, कि विधाताके करतब भी कुछ अजीब ढंगके होते हैं—वह प्रत्येक रत्नमें ही कोई-न-कोई दूषण लगा देता है। उसने जैसे चन्द्रमामें कलङ्क लगाया, सूर्यमें बेहद गरमी पैदा कर दी, आकाश-को शून्य बनाया, पवनको चंचल कर दिया, मणिको पत्थरोंकी

गिनतीमें रखा, कल्पवृक्षको जड़ बनाया, पृथ्वीमें धूल भर दी, समुद्रको खारी बनाया, बादलोंका रङ्ग काला कर दिया, अग्निको सब कुछ जलानेवाला बनाया, पानीको हरदम नीचेकी ही ओर जानेवाली चीज़ बनाया, मेरुको कठोर कर दिया, सुगन्धित कपूर-को तुरत उड़ जानेवाला बनाया, कस्तूरी काली-कलूटी बनायी, विद्वान्को निर्धन बनाया, धनवानोंको मूर्ख कर रखा और राजा-ओंको लोभी बना दिया, उसी तरह उसने हमारे राजाको ऐसा सुन्दर पुत्र देकर भी इसे गूँगा कर दिया। इसे विधाताकी विचित्र विधि नहीं, तो और क्या कहें? इसी तरहकी बातें कह-कहकर लोग तरस खाने और राजाके साथ सहानुभूति दिखलाने लगे। सच है, बड़े आदमियोंका दुःख देखकर सबकी छाती फटने लगती है!

# तीसरा परिच्छेद

इसी तरह दिन बीतते चले गये। राजकुमार गूँगाही बना रहा। राजाके सब उपाय व्यर्थ हो गये। उसका गूँगापन किसी तरह नहीं दूर हुआ। राजा और रानीके चित्तमें यह बात विष-बुझे बाणकी तरह बिंधकर उन्हें बेहद दुःख दिया करती थी ; पर बेचारे करें क्या? सिवा धैर्य धारण करनेके, उनके हाथमें दूसरा उपाय ही क्या था?

कुछ दिन बाद एक बार कौमुदी-महोत्सवके अवसरपर राजा अपनी प्यारी रानी कमलमाला और गूँगे पुत्र शुकराजको साथ लिये हुए उसी बागीचेमें आ पहुँचे। वहाँ पहुँचकर दूरसे ही उस आमके पेड़को देखकर राजाने बड़ी उदासीके साथ कहा,—"देवी! वह देखो, वही वह आमका पेड़ है, जिसके नीचे मेरे पुत्रका कण्ठ सदाके लिये बन्द हो गया था। अब तो उस विष-वृक्षके पास जानेकी भी इच्छा नहीं होती।" यह कह, राजा उस ओर न जाकर, दूसरी ओर चले। इसी समय कुछ दूर जाते-न-जाते उन्होंने उसी आम्र-वृक्षके नीचे आनन्ददायक दुन्दुभि-नाद

होते सुना। यह सुन, राजाने बागीचेमें रहनेवाले एक आदमीसे इसका कारण पूछा। उसने कहा,—"महाराज! अभी हालमें श्रीदत्त नामक मुनिको यहींपर केवल-ज्ञान उत्पन्न हुआ है। इसी लिये देवता लोग हर्ष मनाते हुए दुन्दुभि बजा रहे हैं।" यह सुनतेही राजा मुनिसे अपने पुत्रके गूँगेपनका कारण आदि पूछने-के लिये उधर ही चल पड़े।

वहाँ पहुँच, रानी और पुत्रके साथ-ही-साथ, मुनिको प्रणाम कर, राजा उनके सामने ही बैठ गये। उसी समय मुनि महा-राजने संसारके क्लेशको नाश करनेवाली सुधाके समान देशना सुनायी। देशना समाप्त होनेपर राजाने उनसे अपने पुत्रका कण्ठ-बन्द हो जानेका कारण पूछा। यह सुन, मुनीश्वरने कहा,— "राजन्! तुम घबराओ नहीं, तुम्हारा यह पुत्र अवश्य ही बोलेगा।"

राजाने हर्षित होकर कहा,—"स्वामी! तब तो मैं मानों सब कुछ पा जाऊँगा। इसका कण्ठ खुल जाये, तो मैं अपना अहोभाग्य समझूँ।"

यह सुन, मुनि महाराजने शुकराजसे कहा,—"पुत्र शुकराज! अब तू भली भाँति मेरी वन्दना कर।"

गुरु महाराजके मुँहसे यह बात निकलते ही शुकराज तुरत उठ खड़ा हुआ और 'इच्छामि खमासमणो' इस सूत्रका उच्चारण कर उसने मुनीश्वरकी वन्दना की। यह आश्चर्य-लीला देख, जितने लोग वहाँ मौजूद थे, सबके सब आनन्द और विस्मयसे भर

उठे और बोले,—"अहा! यह मुनिकी कैसी अपूर्व महिमा है, कि यह बालक, जो एक मुद्दतसे गूँगा हो रहा था, बिना किसी मन्त्र-तन्त्र या टोने-टटकेके, एकाएक बोल उठा।"

सबके चुप हो जानेपर राजाने पूछा,—"मुनिवर! यह आश्चर्य-लीला कैसी है, कृपा कर मुझे समझाकर मेरा सन्देह दूर कीजिये।"

यह सुन, केवलज्ञानी मुनिने कहा,—"हे राजन्! अब मैं तुम्हें कुछ पूर्व-भवकी बातें बतलाता हूँ। उन्हें ध्यान देकर सुनो—

"किसी ज़मानेमें मलयदेशमें भद्दिलपुर नामका एक नगर था। उस नगरमें बड़ेही विचित्र चारित्रवाले जितारि नामके राजा रहते थे। इन्होंने जिस प्रकार एक ओर अपने द्वारपर आनेवाले सभी याचकोंको मुँहमाँगा दान देकर निहाल कर दिया था, वैसेही दूसरी ओर अपने सम्मुख आनेवाले सभी शत्रुओंको परास्तकर उन्हें क़ैद कर लिया था। चतुरता, उदारता और शूरता आदि गुणोंसे सुशोभित वे राजा एक दिन अपने दरबारमें बैठे हुए थे। इसी समय द्वारपालने आकर कहा,—'महाराज! विजयदेव राजाका पवित्र हृदयवाला दूत आया है और महाराजके दर्शन करना चाहता है। यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं उसे बुला लाऊं।' राजाने झटपट आज्ञा दे डाली। थोड़ी ही देरमें वह दूत दरबारमें आ पहुँचा। राजाने जब उससे यहाँ आनेका कारण पूछा, तब उस सत्यवक्ता और सुचतुर दूतने हाथ जोड़कर कहा,—'महाराज! साक्षात्

देवपुरीके समान देवपुर नामका एक नगर है, जिसमें वासुदेवके समान पराक्रमी विजयदेव नामके राजा राज्य करते हैं। उनकी पटरानीका नाम प्रीतिमती हैं। वे सतियोंमें शिरोमणि हैं। सत्-नीतिसे जैसे साम, दाम, भेद और दण्ड आदि चार उपाय उत्पन्न होते हैं, वैसे ही महारानी प्रीतिमतीने चार पुत्रोंको जन्म दिया है। इसके बाद रानीके गर्भसे उभय कुलको उज्ज्वल करनेवाली, सुन्दर लक्षणोंसे युक्त, राजहंसीके समान एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम हंसी रखा गया। चार पुत्रोंके बाद यह लड़की हुई थी, इसी लिये राजा और रानीने उसे पुत्रके ही समान प्यार करना और बड़े लाड-चावसे पालना-पोसना शुरू किया। क्रमसे बढ़ती-बढ़ती वह आठ वर्षकी हो गयी। इसी समय महारानी प्रीतिमतीके गर्भसे लावण्य-सरोवरके जलमें विहार करनेवाली सारसीके समान एक दूसरी कन्या उत्पन्न हुई। इसका नाम सारसी रखा गया। ये दोनों बहनें अपनी अलौकिक सुन्दरताके कारण ऐसी शोभित होने लगीं, मानों विधाताने सारी पृथ्वी और आकाशकी सुन्दरता लाकर उन्हींके शरीरमें इकट्ठी कर दी है। उनकी उस अनुपम सुन्दरताकी उपमा संसारमें नहीं थी। वेही परस्पर एक दूसरीकी उपमा थीं। इसी तरह ज्यो-ज्यों वे दोनों उमरमें बढ़ती गयीं, त्यों-त्यों उन दोनोंकी प्रीति भी आपसमें बढ़ती चली गयी। क्रमशः राजकुमारी हंसी यौवनावस्थाको प्राप्त हुई; परन्तु वह अपनी छोटी बहनको इस प्रकार दिलसे प्यार करती थी, कि विवाह करनेको तैयार ही नहीं होती थी। इसी

तरह समय बीतता चला गया—हंसी जवानोकी सबसे ऊँची सीढ़ीपर पहुँच गयी। इधर क्रमसे सारसी भी युवती हो चली। तब दोनों बहनोंने एक दिन आपसमें यह प्रतिज्ञा कर डाली, कि हम दोनों एकही पुरुषके साथ विवाह करें, जिसमें हमारा कभी वियोग नहीं हो। जब उन दोनोंकी इस प्रतिज्ञाकी बात राजाने सुनी, तब उन्होंने उन दोनोंके लिये स्वयंवर रचाया। स्वयंवरका मण्डप तैयार हो गया है। उसमें बड़े ही सुन्दर-सुन्दर मञ्च राजा-राजकुमारोंके बैठनेके लिये तैयार किये गये हैं। अन्न-धन और सम्पद्के इतने ढेर राजाने इकट्ठे कर रखे हैं, कि वे छोटे-मोटे पर्वतके ही समान दिखाई दे रहे हैं। अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग, आन्ध्र, जालन्धर, मरुस्थल, लाट, भोट, महाभोट, मेदपाट, विराट. गौड़, चाड़, महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, कुरु, गुर्जर, आभीर, कीर, काश्मीर, गौल, पाञ्चाल, मालव, हूण, चीण, महाचीण, कच्छ, कर्णाटक, कुंकण, नेपाल, कान्यकुब्ज, कुन्तल, मगध, निषध सिन्धु, विदर्भ, द्राविड़, ऊंडक आदि सभी देशोंके राजाओं और राजकुमारोंको न्यौता दिया गया है। इसी लिये, हे मलय-नरेश! मैं आपकी सेवामें आया हूँ। कृपा कर आप देवपुरमें पधारें और स्वयंवर मण्डपकी शोभा बढ़ायें।'

"दूतकी यह बात सुन, राजा जितारि बड़े सोचमें पड़ गये। उन्होंने अपने मनमें विचार किया, कि कन्या-प्राप्तिकी आशासे मैं यदि वहाँ गया और मुझे सफलता नहीं हुई, तो बड़ा बुरा होगा। [illegible]ी सोच-विचारमें उनका चित्त सन्देहके झूलेमें झूलने लगा।

अन्तमें बहुत कुछ सोच-विचार कर उन्होंने जाना ही निश्चय किया। देवपुर जानेकी तैयारी होने लगी। यात्राके दिन पक्षियों-की शुभ शकुनवाली बोलियाँ सुन-सुनकर परम उत्साहित होकर राजाने अपने नगरसे देवपुरकी ओर प्रस्थान किया। यथासमय वे देवपुर पहुँचे। उस समयतक बहुतसे स्थानोंके राजा वहाँ पहुँच चुके थे। विजयदेवने सब राजाओंको बड़े आदरसे अपने नगरमें रखा और उनका विविध भाँतिसे अतिथि-सत्कार करना शुरू किया। सभी राजा-राजकुमार उनके व्यवहारसे सन्तुष्ट हो गये। जब सभी निमन्त्रित व्यक्ति आ चुके, तब एक दिन राजा विजय-देवने सबको स्वयंवर-मण्डपमें पधारनेके लिये कहा। सबके अपने-अपने स्थानपर बैठ जानेके बाद विजयदेव भी नाना प्रकारके अलङ्कार धारण किये हुए सुन्दर मणिमय सिंहासनपर आ बैठे। इसके बाद ही स्नान और विलेपनसे शरीरको पवित्र कर रेशमी वस्त्रों और मणिमय अलङ्कारोंसे शरीरको अच्छी तरह अलङ्कृत किये हुई वे दोनों बहनें सभा-मण्डपमें आयीं। उस समय उन्हें देखकर लोगोंको ऐसा मालूम पड़ा, मानों साक्षात् सरस्वती और लक्ष्मी ही वहाँ आ पहुँची हों। उन दोनोंकी वह अपूर्व सुन्दरता देख राजाओंके चित्त चञ्चल हो उठे और सब लोग यही इच्छा करने लगे, कि ये अपूर्व सुन्दरियाँ मेरे ही गलेका हार बन जायें! इसी विचारसे सब लोग विविध भाँतिकी चेष्टाएँ करते हुए उन दोनों बहनोंकी दृष्टि अपनी ओर आकर्षित करनेका प्रयत्न करने लगे। एकही साथ सैकड़ों हृदय उन सुन्दरियोंके चरणोंपर

न्योंछावर हो गये। वे दोनों राजकुमारियाँ आकर खड़ी ही हुई थीं, कि उनकी सखियाँ एक-एक करके सब राजाओंका परिचय देने लगीं। उन्होंने कहा,—'बहनो! यह देखो, यह सब राजाओंके राजा—राजगृहके नरेश हैं। यह शत्रुओंके सुख-सौभाग्य-का ध्वंस करनेवाले परम नीति-कुशल कौशल-देशके राजा हैं। अपनी शोभासे सारे स्वयंवर-मण्डपकी शोभा बढ़ानेवाले यह गुर्जर-देशाधिपतिके चिरंजीव कुमार हैं। जयन्तकी ऋद्धिको भी लज्जित करनेवाले यह सिन्धु-नरेशके पुत्र हैं। शूरता और उदारता-रूपिणी लक्ष्मीके संग रमण करनेकी रंग-भूमिके समान यह अङ्ग-देशके अधिपति हैं। इच्छित ऋद्धियोंका आलिङ्गन करनेवाले यह कलिङ्गदेशके राजा हैं। अपने रूपके सामने कामदेवको भी लज्जित करनेवाले यह वङ्गदेशके राजा हैं। बेशुमार दौलतके मालिक यह मालवाके मशहूर महाराज हैं। प्रजाका पालन करनेवाले और परम कृपालु यह नेपालके भूपाल हैं। अन्यान्य अच्छे-अच्छे गुणोंसे भरे हुए यह कुरु-देशके राजा हैं। शत्रुओंकी स्त्रियोंकी शोभाका हरण करनेवाले यह निषध-देशके राजा हैं। यशरूपी सुगन्धिके मलयाचलके समान यह मलय-देशके राजा हैं।"

इस प्रकार जब एक-एक करके सभी राजाओंका परिचय सखियोंने दोनों राजकुमारियोंको दिया, तब जैसे इन्दुमतीने राजा अजके गलेमें जयमाला पहनायी थी, वैसेही उन दोनोंने भी राजा जितारिके गलेमें वर-माला डाल दी। यह देख, स्पृहा, औत्सुक्य, सन्देह, हर्ष और आनन्दके विविध भाव उपस्थित सज्जनोंके मनमें

पैदा होने लगे। जो लोग राजकुमारियोंको पानेकी आशामें थे, वे इस प्रकार अपनी आशाको मिट्टीमें मिलते देखकर लज्जा, ईर्षा और अनुतापसे भर गये। कितने तो वहाँ आनेके ही लिये पछताने लगे, कितनोंने अपना जन्म ही व्यर्थ समझा और कितने ही मन-ही-मन राजा जितारिपर जलने लगे।

"इसके बाद एक दिन शुभ मुहूर्त्तमें राजा विजयदेवने राजा जितारिके साथ अपनी दोनों कन्याओंका विवाह कर दिया और दहेज़में बहुतसा धन, द्रव्य; हाथी, घोड़े, दास-दासियाँ आदि देकर दामादका पूरा-पूरा सम्मान किया। बिना पुण्यके किसीका मनोरथ पूरा नहीं होता, यह बात बहुत ही ठीक है; क्योंकि देखो, उस स्वयंवरमें न जाने कितने राजा-राजकुमार राजकुमारी-को पानेकी अभिलाषासे आये थे, पर किसीकी आशा पूरी न हुई और राजा जितारिने बाज़ी मार ली। और भी बड़े आश्चर्यकी बात तो यह है, कि वे लोग संख्यामें बहुत बढ़े-चढ़े थे, तोभी वे राजा जितारिका बाल भी बाँका न कर सके। इसके बाद रति और प्रीतिके समान अपनी दोनों स्त्रियोंको साथ लिये हुए राजा जितारि अपने नगरकी ओर चल पड़े। जब राजा अपने नगरमें चले आये, तब वे अपनी आँखोंकी तरह उन दोनों स्त्रियोंको प्यार करने लगे; पर तोभी उनमें सौतियाडाह उत्पन्न हुए बिना न रहा। मोहकी यह विकट महिमा तो देखो,—जो दोनों बहनें आपसमें इतना प्रेम रखती थीं, जिन्होंने बिछुड़नेकेही डरसे एकही स्वामीके साथ विवाह किया, वे ही अब एक दूसरीको सौत समझकर परस्पर

डाह करने लगीं। शास्त्रकारोंने सच कहा है, कि एक ही चीज़के दो चाहनेवालोंमें प्रेम नहीं रह सकता।

"हंसी स्वभावसे ही बड़ी सरल थी; परन्तु सारसीकी प्रकृति बड़ी मायाविनी थी। वह कभी-कभी बड़े नख़रे दिखलाती और राजाका मन मोह लेती थी। परन्तु इस प्रकार कपट करनेके कारण उसने दृढ़ स्त्री-कर्म उपार्जन किया। हंसी राजाको कम प्यारी थी; परन्तु अपने सरल स्वभावके कारण उसने स्त्री-वेदना-कर्म-दलको शिथिल कर दिया। प्राणियोंकी यह कितनी बड़ी मूर्खता है, कि वे व्यर्थ ही माया और कपट का जाल फैलाते तथा अपनी आत्माको दूसरे भवमें नीचे जानेको मजबूर करते हैं।

"एक दिन राजा अपनी दोनों स्त्रियोंके साथ खिड़कीपर बैठे हुए थे। इसी समय उन्होंने रास्तेमें जाते हुए कुछ निर्दोष मनुष्योंका एक झुंड देखा। यह देख, राजाने अपने नौकरोंसे पूछा, कि ये लोग कौन हैं? यह सुन, सेवकोंने कहा, कि महाराज! शंखपुर नामक नगरसे आया हुआ श्रीसंघ है और विमलाचल नामक महातीर्थकी यात्रा करने जा रहा है। यह सुन, राजाको बड़ा ही कौतूहल हुआ और वे उस संघके पास आ, श्रुतसागर नामक आचार्यकी वन्दना कर उनसे पूछने लगे,—'भगवन्! विमलाचल क्या है? उसे तीर्थ क्योंकर माना जाता है और उसका माहात्म्य क्या है?' यह सुन, क्षीराश्रव-लब्धिको धारण करनेवाले सूरीश्वरने इस प्रकार उपदेश दिया,—

"धर्मसे सभी इष्ट वस्तुएँ प्राप्त होती हैं—सभी साधनाओं-की सिद्धि होती है, इसलिये इस जगत्में धर्म ही एक सार-पदार्थ है। इसी तरह जगत्में जितने धर्म हैं, सबमें अर्हन्तका धर्म (जैनधर्म) मुख्य हैं और इसमें भी सम्यक्दर्शन श्रेष्ठ है; क्योंकि जबतक सम्यक्दर्शन नहीं प्राप्त होता, तबतक सभी व्रत-नियम व्यर्थ ही हो जाते हैं। यह सम्यक्दर्शन देव, गुरु और धर्म—इन तीन रत्नोंकी श्रद्धासे प्राप्त होता है। इनमें भी जिनेश्वर मुख्य हैं। सब जिनेश्वरोंमें प्रथम तीर्थङ्कर श्री ऋषभ-देव-स्वामीका यह तीर्थ है, इसलिये इसकी इतनी महिमा गायी जाती है। यह सब तीर्थोंसे श्रेष्ठ माना जाता है। भिन्न-भिन्न गुणों और महिमाओंके कारण इस तीर्थके भिन्न-भिन्न नाम हैं। सिद्धक्षेत्र, तीर्थराज, मरुदेव, भगीरथ, विमलाचल, बाहुबली, सह-स्त्रकमल, तालध्वज, कदम्ब, शतपत्र, नगाधिराज, अष्टोत्तर, शत-कूट, सहस्रपत्र, ढङ्क, लौहित्य, कपर्द्दिनिवास, सिद्धिशेखर, पुण्ड-रीक, मुक्तिनिलय, सिद्धिपर्वत और शत्रुंञ्जय आदि मुख्यतया इक्कीस नाम इस तीर्थके माने जाते हैं। ये जुदे-जुदे नाम, देव-ताओं, मनुष्यों और मुनियोंके रखे हुए हैं। वर्त्तमान अवस-र्पिणीमें ऊपर गिनाये हुए इक्कीस नामोंमेंसे कितने ही नाम क्रमशः रखे जा चुके हैं और कितनेही आगे रखे जायेंगे। हे राजन्! मैंने केवल-ज्ञानीके मुँहसे सुना है, कि इन इक्कीस नामोंमेंसे 'शत्रुंजय' यह नाम आप ही अपने आगामी भवमें अनुभव प्राप्त कर रखेंगे। वर्त्तमान अवसर्पिणीके आरम्भसे अबतक चार

तीर्थङ्करोंका इस तीर्थमें आगमन हो चुका है और अभी नेमि-नाथ भगवान्‌के अतिरिक्त शेष उन्नीस तीर्थङ्करोंका वहाँ आगमन होनेवाला है। अनन्त जीव उस तीर्थमें सिद्धि-पदको प्राप्त कर चुके हैं और अभी अनन्त जीव भविष्यत्‌में वहाँ सिद्धि-पद प्राप्त करेंगे। इसी लिये इस तीर्थको सिद्धक्षेत्र कहा जाता है। महा-विदेहमें विचरण करनेवाले, विश्व-वन्दनीय तीर्थङ्करोंने भी इस तीर्थकी प्रतिष्ठा की है। बड़े-बड़े भव्य प्राणी निरन्तर इसके नामकी माला जपते हैं। जैसे अच्छी तरह जोते हुए खेतमें बोया हुआ बीज अन्न उपजाता है, वैसे ही इस तीर्थमें यात्रा, स्नान, पूजन, तप और दान आदि सत्कर्म करनेसे बहुत ही अच्छा फल प्राप्त होता है। कहते हैं, कि इस तरहका ध्यान करनेसे हजार पल्योपमका,* इस तीर्थमें जानेका निर्णय करनेसे लाख पल्योपमका और तीर्थकी राहमें आजानेसे एक सागरोपमका† पातक नष्ट हो जाता है। शत्रुंजय-पर्वत के ऊपर जाकर श्रीजिनेश्वर भगवान्‌का दर्शन करनेसे नरक और तिर्यञ्च—इन दोनों गतियों-को प्राप्त होनेका भय दूर हो जाता है। यहाँ पूजा और स्नान-विधान करनेसे हज़ारों सागरोपमके उपार्जित दुष्कर्म नष्ट हो जाते हैं। इस पुण्डरीक-पर्वतकी ओर एक एक पग रखनेसे मनुष्य-के करोड़ों जन्मोंके पाप कट जाते है। शुद्ध-बुद्धिमान मनुष्य,

* असंख्य वर्षोंका एक "पल्योपम" होता है।

† दस कोड़ाकोड़ी पल्योपमका एक "सागरोपम" होता है।

शुभ ध्यान-द्वारा, अन्यान्य स्थानोंमें जाकर जितना पुण्य पूर्वकोटी* वर्षोंमें उपार्जन करता है, उतना यहाँ एक मुहूर्त्तमें ही उपार्जन कर लेता है। करोड़ों वर्षोंतक पुण्य-कर्म करते रहनेपर जो फल प्राप्त होता है, वह इच्छानुसार आहार-विहार करते रहनेपर भी इस तीर्थमें केवल एक ही उपवास करनेसे मिल जाता है। पुण्डरीक-पर्वतकी एक बार वन्दना करनेसे स्वर्ग, मर्त्य और पाताल—इन तीनों लोकोंके समस्त तीर्थोंकी वन्दना हो जाती है। और-और स्थानों में साधु, साध्वी, सम्यग्दृष्टि और संघका सेवा-सत्कार करनेसे जो फल प्राप्त होता है, उससे कई गुना अधिक फल इस तीर्थमें इन सब कामोंके करनेसे होता है। मन, कर्म और वचनसे शुद्ध रहते हुए जो मनुष्य इस शत्रुंजय-गिरिका स्मरण करता है, वह यदि 'नवकारसी'† करे, तो छट्ठका‡ फल पावे; 'पोरसी'§ करे, तो 'अट्ठम'$ का फल पावे; 'पुरिमड्ढ'φ करे, तो चार उपवास का फल पावे; "एकासणा"+ करे, तो

* सात लाख, छप्पन हजार करोड़ वर्षोंका एक "पूर्व" होता है, ऐसे करोड़ पूर्व होनेपर "पूर्वकोटी" संख्या होती है।

(†) सूर्योदयसे अड़तालिस मिनटके बाद अन्न-जल ग्रहण करना "नवकारसी" व्रत कहलाता है। (‡) एक साथ दो उपवासोंका करना "छट्ठव्रत" कहलाता है। (§) सूर्योदयसे एक प्रहर पर्यन्त अन्न-जल ग्रहण न करना "पोरसी" व्रत कहलाता है। ($) एक साथ तीन उपवासोंका करना "अट्ठमव्रत" कहलाता है। (φ) सूर्योदयके पश्चात् दो प्रहरतक अन्न-पान न करना "पुरीमड्ढ" व्रत कहलाता है। (+) एक स्थानपर बैठकर सारे दिनमें केवल एक बार भोजन करना "एकासणा" व्रत कहलाता है।

पाँच उपवासका फल पावे; "आम्बिल"* करे, तो पन्द्रह उपवास का फल पावे; और उपवास करे. तो मास-क्षमणका† फल पावे । शत्रुंजय—तीर्थ में पूजा और स्नान करनेसे जितना फल मिलता है, उतना दूसरे तीर्थोंमें सुवर्ण, भूमि तथा भूषणोंका दान करनेसे भी नहीं मिल सकता । इस पर्वत पर धूप जलानेसे पन्द्रह उपवासका फल प्राप्त होता है; कपूर आदि सुगन्धित पदार्थोंका धूप-दीप करनेसे मास-क्षमणका फल प्राप्त होता है और साधुओंका सत्कार करनेसे तो ऐसे-ऐसे कितने ही मास-क्षमणोंका फल प्राप्त होता है । जैसे बहुतसे जलाशय होते हुए भी समुद्र को ही नीरनिधि कहते हैं, वैसे ही सब तीर्थोंमें यह महातीर्थ है । जिस प्राणीने इस तीर्थकी यात्रा करके अपने अर्थको सार्थक नहीं किया, उसका जीवन, जन्म, द्रव्य और कुटुम्ब—सब कुछ बेकार ही समझना चाहिये । जिसने इस तीर्थको वन्दना नहीं की, उसका इस संसार में आना और न आना एक ही सा हुआ । उसका जीना-मरना बराबर है । वह पण्डित हो, तोभी मूर्ख के समान है । यदि दान, शील, तप और अन्यान्य कठिन क्रियाएँ दुःशक्य हैं, तो बड़े सुखसे होने योग्य इस तीर्थकी वन्दना क्यों न करे ? इसे तो प्रत्येक प्राणीको बड़ी खुशीसे करना चाहिये । जिसने शत्रुंजय-तीर्थ की सात

---

* सारे दिनमें एकबार अलोना भोजन करना "आम्बिल व्रत" कहलाता है । † एक मासतक हमेशा उपवास करते रहना "मास-क्षमण" व्रत कहलाता है ।

बार पैदल-यात्रा विधि पूर्वक की है, वही धन्य है—मान्य है। जो प्राणी चउविहार* के साथ छट्ठ करके शत्रुंजय-तीर्थको सात बार यात्रा करता है, वह तीसरे जन्ममें सिद्धि-पदको प्राप्त होता है। हे राजन्! शास्त्रोंमें इस तीर्थका ऐसा ही माहात्म्य लिखा हुआ है।”

राजाका हृदय गुरु महाराजकी यह बातें सुनकर ठीक उसी तरह कोमल हो गया, जिस तरह वर्षाके पानीसे काली मिट्टीवाली ज़मीन कोमल बन जाती है। इसका कारण यह था, कि राजाके हृदयमें पहलेसे ही सद्भावोंका अभाव नहीं था। साथ ही जगद्बन्धु गुरु महाराजके तो यह सर्वथा योग्य ही था, कि अपनी बातोंसे तत्काल ही राजाके अज्ञान-रूपी अन्धकारका नाश कर, सम्यक्त्वका प्रकाश फैला दें।

इस प्रकार जब राजाको सम्यक् रूपसे सम्यक्त्व प्राप्त हो गया, तब उन्होंने यात्रा करनेके लिये परम उत्कण्ठित होकर अपने मन्त्रियोंको बुलाकर कहा, कि जल्दी ही मेरी यात्राकी तैयारी करो। उनके जीमें शत्रुञ्जय-तीर्थकी यात्रा करनेकी ऐसी प्रबल उत्कण्ठा हुई, कि वे पैदल ही वहाँतक जानेको तैयार हो गये और उन्हें यहाँतक उत्साह हो आया, कि वहाँ पहुँच कर जबतक श्रीयुगादीश जिनेश्वरका दर्शन न कर लूँ, तब

*बिना जल पिये एक साथ दो उपवासोंका करना “चउविहार छठ” व्रत कहलाता है।

तक अन्न-जल भी न ग्रहण करूँ, ऐसा सङ्कल्प ले कर बैठे। हंसी और सारसीने जब यह हाल सुना, तब उन्होंने भी इसी तरहका उत्साह और आग्रह प्रकट किया। देखादेखी अनेक पुरजनोंको उस तीर्थकी यात्रा करनेका उत्साह हो आया और सब लोगोंने वहाँ जानेका पूरा सङ्कल्प कर लिया। कहा है, कि यथा राजा तथा प्रजा।

परन्तु राजा या अन्य लोगोंने विना कुछ सोचे-विचारे ऐसा सङ्कल्प कर लिया। अब इनका क्या हाल होगा! इन्होंने यह भी नहीं सोचा, कि हमें जहाँ जाना है, वह स्थान यहाँसे कितनी दूर है और ऐसा कठिन प्रण करके हम वहाँतक कैसे पहुँच सकते हैं? यह तो बड़े भारी साहसकी बात है। यह तो प्रण नहीं—प्राण देनेका उपाय है। यही सब सोच-विचार कर, मन्त्री लोग राजाको बार-बार समझाने लगे, कि महाराज! ऐसी अनहोनी बातका मनसूबा छोड़ दीजिये। गुरु महाराजने भी कहा, कि महाराज! ऐसा दुस्साहस न करें। बहुत सोच-विचार कर प्रतिज्ञा करें; क्योंकि बिना विचारे काम करनेसे उसका फल उलटा होता है,—फिर जन्मभरके लिये पछतानाही हाथ रहता है।

यह सुन राजाने बड़े उत्साहके साथ कहा,—"स्वामिन्! अब तो मैं अभिग्रह (सङ्कल्प) धारण कर चुका। अब तो सोचना-विचारना व्यर्थ है। किसीके हाथका पानी पी लेनेके बाद उसकी ज़ात-पाँत किस लिये पूछना? हजामत बनवा लेने-के बाद दिन-वार और तिथि-नक्षत्रकी बात पूछनेसे क्या लाभ?

महाराज ! यदि देवता और गुरुकी दया होगी, तो मैं अवश्यही अपना सङ्कल्प पूरा कर लूंगा और मुझे इसके लिये पछताना नहीं पड़ेगा । क्या सूर्यकी कृपासे अरुणसारथी आकाशका अन्त नहीं पा जाता ! उसी तरह मैं भी देवता और गुरुकी दयासे अपने संकल्पका अन्त लगाकर ही छोड़ूंगा ।”

यह कह, राजा अपने पुरवासियों, स्त्रियों और सैनिकोंको लिये हुए उसी संघके साथ चल पड़े।

# चौथा परिच्छेद

राजा इस प्रकार फुर्त्तीके साथ तीर्थ-यात्राके लिये रवाना हो गये, मानों वे कर्म-रूपी शत्रुओंपर चढ़ाई करने जा रहे हों। जाते-जाते कुछ दिनों बाद वे काश्मीर-देशके एक मठमें आ पहुँचे। उस समय भूख-प्यास और पैदल यात्रा करनेके कारण राह चलनेकी थकावटसे राजा और रानीके सूखे हुए चेहरेको देख, चिन्तासे व्याकुल होकर, सिंह नामक मंत्रीने गुरु महाराजके पास आकर कहा,—"महाराज! आप किसी तरह महाराजको समझाइये, नहीं तो धर्मके स्थानमें जैन-शासनकी अवहेलना ही होगी। उसी समय सूरीश्वरने राजाके पास आकर कहा,—"राजन्! तुम लाभालाभका विचार क्यों नहीं करते? कहते हैं, कि—

सहसाविहितं कार्यं न प्रायेण प्रमाण्यते।
आगाराः सहसाकारादयः सर्वत्र हि स्मृताः॥'

अर्थात्—प्रायः सहसा किये हुए कार्य सिद्ध नहीं होते; क्योंकि सहसाकारादि चार आगार सर्वत्र कहे जाते हैं। इसलिये तुम ऐसा ही काम करो, जिससे सुख हो।"

शरीरसे थके हुए ; पर मनसे दृढ़चित्तवाले राजाने कहा,—"महाराज! आप यह उपदेश किसी कमज़ोर आदमीको देते, तो अच्छा था। मैं तो अपनी की हुई प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेकी सामर्थ्य रखता हूँ। प्राण भलेही चले जायें, पर मेरी प्रतिज्ञा नहीं भ्रष्ट हो सकती।"

राजाके इन जोशीले वचनोंको सुनकर उनकी हंसी और सारसी नामक दोनों स्त्रियाँ भी वहाँ आ पहुँचीं और बड़ा जोश दिखलाती हुई अपने स्वामीकी प्रतिज्ञाके पालनमें अपना प्राण दे देनेकी भी दृढ़ता दिखलाने लगीं। प्रतिज्ञा-पालनके सम्बन्धमें उनका वैसा उत्साह देखकर सब लोग उनके धर्म-प्रेम, एकचित्तता, पतिप्राणता और सङ्कल्प-दृढ़ताकी सौ-सौ मुँहसे प्रशंसा करने लगे। जिसे देखो, वह यही कह रहा है, कि अहा! यह तो सारा कुटुम्बही धर्मका प्रेमी दिखलाई दे रहा है—इन स्त्रियोंकी सात्विकता तो ज़रा देखो! ऐसी-ही-ऐसी बातें कहकर लोग राजा और रानी आदिकी बड़ाई करने लगे।

इसके बाद 'अब न जाने क्या होगा?' इसी सोचमें पड़ा हुआ वह मन्त्री सोने गया। उसे सोये हुए थोड़े ही देर हुई थी, कि उसने स्वप्नमें देखा, कि विमलाचल-गिरिका अधिष्ठाता गोमुख-यक्ष उसके सामने आ पहुँचा है और कह रहा है,—"मन्त्री! तुम व्यर्थ चिन्ता न करो। राजाकी यह दृढ़ता देखकर मैं बड़ा ही सन्तुष्ट हुआ हूं। मैं सब लोगोंमें दैवी शक्ति भरकर उन्हें विमलाचल-महातीर्थमें पहुँचा दूँगा। कल प्रातःकाल चलकर

एक पहर बीतते-न-बीतते तुम लोग उस तीर्थके दर्शन कर सकोगे वहाँ पहुँच, श्रीजिनेश्वर भगवान्‌को वन्दना कर, तुम लोग अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर सकोगे।” यह सुन मन्त्रीने कहा,—“देव! आप सबको ऐसा ही सपना दिखायें, जिससे सब लोग इस बातको मानलें।”

हुआ भी ऐसा ही। यक्षने सबको इसी तरहका स्वप्न दिखाया। इसके बाद उसने उसी जंगलमें एक पर्वतके ऊपर विमलाचल-तीर्थके समान एक नया तीर्थ बना डाला। देवता क्या नहीं कर सकते? देवता जो कुछ वैक्रिय कार्य करते हैं, वह अधिकसे अधिक पन्द्रह दिनोंतक रहता है, पर उनका बनाया हुआ काम बहुत दिनोंतक रह जाता है। जैसे इन्द्रकी बनायी हुई नेमिनाथ भगवान्‌की मूर्त्ति रैवताचल-पर्वतके ऊपर बहुत दिनोंतक ज्योंकी त्यों रह गयी थी।

सवेरे ही उठकर सब लोग एक दूसरेसे रातके स्वप्नका हाल सुनाने लगे। इसी तरहकी बातें करते हुए वे लोग आगे बढ़े। इसके बाद ही देवताके बतलाये अनुसार तीर्थके दर्शन कर उन लोगोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। वहाँ जिनेश्वर महाराजकी वन्दना और पूजाकर सब लोगोंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। सबके शरीर-में आनन्दके मारे पुलकावली छा गयी और पुण्यके अमृतसे सब-की आत्मा परिपूर्ण हो गयी। वहाँ स्नान, ध्वजारोपण, मालोद्-घाटन आदि क्रियाएँ करनेके बाद वे लोग वहाँसे पीछे लौटनेको तैयार हुए। राजा भी वीतरागके गुणोंके टोनेसे मुग्ध हुएके

समान उसी संघके साथ-साथ चल पड़े। परन्तु फिर थोड़े ही दिनमें तीर्थकी वन्दना करनेके लिये वहीं लौट आये। कहनेका मतलब यह, कि वहाँ से लौट जानेपर भी उनका मन नहीं माना और वे फिर वहीं चले आये। इसी तरह अपनी आत्माको सात प्रकारकी नरक-गतिसे बचानेके लिये राजा सात बार वहाँ फिर-फिर कर आये।

यह देख मन्त्रीने पूछा,—"महाराज ! यह क्या मामला है ?"

राजाने कहा,—"जैसे बालक अपनी माँको छोड़कर कहीं जाना नहीं चाहता, वैसेही मुझसे भी यह तीर्थ छोड़ते नहीं बनता। इसलिये मन्त्री ! मेरी तो इच्छा है, कि तुम मेरे लिये यहाँ ही एक नगर बसाओ। मैं तो अब यहीं रहूँगा ; क्योंकि जैसे हाथमें आया हुआ ख़ज़ाना कोई हाथसे निकलने देना नहीं चाहता, वैसे ही मैं भी इस प्रिय स्थानको छोड़ना नहीं चाहता।"

राजाकी यह आज्ञा पाकर, मन्त्रीने तुरतही उस स्थानपर एक नगर निर्माण कराना आरम्भ किया ; क्योंकि बुद्धिमान् मनुष्य अपने स्वामीकी उचित आज्ञाका पालन करनेमें कभी विलम्ब नहीं करते। राजाने उस नगरमें आकर बसनेवालोंका कर सदाके लिये माफ़ कर दिया। इसी लोभसे और तीर्थमें रहनेके स्वार्थ से प्रेरित होकर उस संघके बहुतसे मनुष्य भी वहीं बस गये। उस नगरमें रहनेवाले मनुष्योंके आचरण विमल थे, इसी लिये उसका नाम विमलपुर रखा गया। कहा है, कि जो नाम सार्थक हो अर्थात् जिस नाममें वैसाही गुण भी हो, वही ठीक होता है।

नगर बस जानेपर श्रीजिनेश्वरके ध्यानमें मन लगाये हुए राजा जितारि वहींपर बड़े आनंन्दसे समय व्यतीत करने लगे। कुछ दिन इसी प्रकार बड़े सुखसे बीत गये।

उस नगरमें जो जिन-मन्दिर था, उसके सुनहले कलशपर प्रतिदिन एक मीठी बोली बोलनेवाला तोता आकर बैठा करता था। धीरे-धीरे राजाके मनको उसने आकर्षित कर लिया— राजा उसे देखकर बड़ी प्रसन्नता अनुभव करने लगे। उस प्रासाद-पर आकर बैठनेवाले तोतेपर राजाका मन ऐसा मोहित हो गया, कि वे अर्हन्तका ध्यान भूलनेसे लगे।

इसी तरह बहुत दिनोंके बाद राजाने अपना अन्तसमय आया देखकर श्रीऋषभदेव स्वामीके पास जाकर अनशन करना आरम्भ किया; क्योंकि धर्मात्माओंकी यही रीति है। उनकी दोनों धीर-नारियोंने भी अन्तसमयमें राजाकी मतिको धर्ममें स्थिर रखनेके लिये निर्यापणा* और नमस्कार मन्त्रका जाप करना आरम्भ किया। सच कहा है, कि बुद्धिमान् मनुष्य समयानुसार वर्ताव करनेवाले होते हैं। इसी समय उस मन्दिरपर वही तोता आ बैठा और बड़े मीठे स्वरसे बोलने लगा। दैवयोगसे राजाका ध्यान उसकी ओर चला गया। ज्यों ही उनका ध्यान उस तोतेकी तरफ़ गया, त्योंही उनकी देह छूट गयी और इसी लिये उनकी आत्मा शुक-योनिमें उत्पन्न हुई। ओह, जैसे कोई अपनी छायाको नहीं छोड़ सकता,

*अन्तिम समयमें मनको धर्ममें स्थिर रखनेके लिये जो कुछ व्रत पच्चक्खाणादि धार्मिक क्रिया करते हैं, उसे "निर्यापणा" कहते हैं।

वैसेही होनहारसे भी कोई अपना पिण्ड नहीं छुड़ा सकता। बड़े-बड़े पण्डितोंने ठीक ही कहा है, कि अन्त-समयमें जैसी मति होती है, वैसीही गति भी होती है। शुक आदि प्राणियोंकी क्रीड़ा जिनेश्वर-भगवान्‌की पूजामें विघ्नकाही कारण होती है; क्योंकि जो राजा जितारि सम्यक् दृष्टिवाले थे, जिन्होंने अन्त समयमें पवित्र तीर्थ-भूमिमें अनशन-व्रत अङ्गीकार कर रखा था, उन्होंने भी अन्त समयमें तोतेमें ध्यान लगानेके कारण तिर्यञ्च-गति प्राप्त की। धर्मका ऐसा प्राबल्य होनेपर भी उन्होंने ऐसी गति प्राप्त की, यह इस जीवगतिकी विचित्रता और स्याद्वाद अर्थात् अनेकान्त-मार्गकी स्फुटता है। इस पवित्र तीर्थमें यात्रा करनेसे प्राणी सब दुर्गतिको पहुँचानेवाले दुष्कर्मोंसे छुटकारा पा जाता है; परन्तु वहाँ भी यदि ऐसे कर्मोंका सञ्चय किया जाता है, तो उसका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। इससे तीर्थके माहात्म्यमें तनिक भी कमी नहीं पड़ती; क्योंकि वैद्यके अच्छी दवा देनेपर भी यदि रोगी बदपरहेज़ी करके अपनी बीमारी बढ़ा ले, तो इसमें वैद्य या उसकी दवाका कोई दोष नहीं है। इसी प्रकार तीर्थ-यात्रा करके कर्मोंका क्षय कर लेनेपर भी यदि प्राणी पुनः वहाँ नवीन कर्मका सञ्चय करता है, तो उसे उसका भोग अवश्यही पाना होता है। इससे तीर्थके माहात्म्यमें कोई कसर नहीं समझनी चाहिये। पूर्वकृत दुर्भाग्यके उदयसे उत्पन्न हुए दुर्ध्यानके कारण राजा शुकयोनिको प्राप्त हुए; परन्तु उन्हें सम्यक्त्व प्राप्त हो चुका था। इसलिये आगे चलकर उनका सब तरहसे मङ्गलही होगा; क्योंकि

श्रीजिनेश्वर भगवान्‌के सम्यक्त्वका बहुत बड़ा माहात्म्य है।

इसके बाद राजाकी प्रेतक्रिया समाप्त कर हंसी और सारसीने प्रव्रज्या अङ्गीकार कर ली और अन्तकालमें मृत्युके बाद प्रथम देवलोकमें जाकर देवियाँ हुईं। उन्होंने अवधिज्ञानके द्वारा यह मालूम करलिया, कि उनके स्वामीका जीव इस समय कहाँ है। जब उन्हें यह मालूम हुआ, कि वे तो शुक-योनिमें हैं, तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ। वे झटपट अपने स्वामीके पास जा पहुँचीं और उनसे पूर्वजन्मका हाल बतलाते हुए उन्हें प्रतिबोध देकर उसी तीर्थमें उनसे अनशन कराया। इस बार वे मरकर उन्हीं दोनों देवियोंके स्वामी देव हुए। कालक्रमसे समय पूरा होनेपर पहले वे दोनों देवियाँ ही देवलोकसे च्युत हुईं। उस समय उस देवने केवली महाराजसे पूछा,—"भगवन्! मैं सुलभ-बोधि हूँ या दुर्लभबोधि?" मुनिने कहा,—"तुम सुलभबोधि हो।" यह सुन, देवने कहा,—"स्वामिन्! यह क्योंकर हो सकता है? कृपाकर बतलाइये।" यह सुन, केवली महाराजने कहा,—

"तुम्हारी दोनों देवियोंमेंसे जो पहले च्युत हुई है, हंसी नामक रानीका जीव क्षितिप्रतिष्ठित नगरके राजा ऋतुध्वजका पुत्र मृगध्वज नामक राजा हुआ है और सारसीका जीव पूर्वमें किये हुए कपटके कारण काश्मीर-देशके समीप विमलाचलके निकटवाले आश्रममें गाङ्गिलमुनिकी पुत्री कमलमालाके रूपमें अवतीर्ण हुआ है। इन्हीं दोनोंके संयोगसे तुम इनके घर पुत्रके रूपमें जन्म ग्रहण करोगे और तुम्हारा जातिस्मरण बना रहेगा।"

इतनी कथा सुनाकर श्रीदत्तकेवलीने राजा मृगध्वजसे कहा, "हे राजन्! उसी जितारि राजाके जीवने, तोतेका रूप बनाकर उस दिन तुम्हें उस आमके पेड़पर दर्शन दिया था। वही उस दिन मीठी बोली बोलकर तुम्हें उस आश्रममें ले गया, उसीने विवाहके बाद कन्याके लिये विविध प्रकारके अच्छे-अच्छे वस्त्र और आभूषण दिये, तुम्हें रास्ता दिखलाते हुए पीछे लौटा लाया और तुम्हारे सैनिकोंसे तुम्हारा मिलाप करा दिया। इसके बाद वह देवलोकमें चला गया। आयु पूर्ण होनेपर देवलोकसे च्युत हो, वही तुम्हारा शुक नामका यह पुत्र हुआ है। तुम इसे उसी आम्रवृक्षके नीचे ले आये, इसीसे इसे जातिस्मरण हो आया और यह सोचने लगा, कि यह तो बड़ी विचित्र लीला हुई। पूर्वजन्म में जो दोनों मेरी स्त्रियाँ थीं, वेही इस समय मेरे माता-पिता हैं। उन्हें माता-पिता कहकर पुकारनेकी अपेक्षा तो मौन रहनाही अच्छा है। यही सोचकर यह बालक मौन होरहा है। यह कोई रोगी नहीं था; बल्कि इसने जानबूझकर मौन अवलम्बन कर लिया था, इसीसे तुम्हारा कोई उपाय काम न आया और यह गूँगा बना रहा। अबके मेरी आज्ञा टालना अनुचित समझकर ही इसने मुँह खोला है। शुकराज लड़का है, तोभी पूर्व-भवके अभ्यासके कारण इसके सम्यक्त्व आदि संस्कार निश्चल हैं, कहा भी—है, कि शुभ और अशुभ संस्कार निश्चयही पूर्व भवके अभ्यासके ऊपर निर्भर हैं।"

मुनि ऐसा बालही रहे थे, कि शुककुमारने कहा,-"स्वामिन्! सचमुच आपने जो कुछ कहा है, वह सोलहों आने ठीक है।"

पुनः केवलज्ञानी महाराजने कहा,—"भाई शुक ! इसमें आश्चर्य की तो कोई बात नहीं है । यह भव एक पूरा नाटक है, जिसमें प्रत्येक जीव अनन्तवार अनेक रूपसे एक दूसरेके साथ आया और तरह-तरहके सम्बन्ध भोग चुका है । कहा भी है, कि—

'यः पिता स भवेत् पुत्रो यः पुत्रः स भवेत्पिता ।
या कान्ता सा भवेन्माता या माता सा भवेत्पिता ॥'

*अर्थात्—जो पिता है, वही पुत्र हो जाता है और जो पुत्र होता है, वही पिता हो जाता है । जो स्त्री होती है, वही माता हो जाती है और जो माता होती है, वही पिता हो जाता है । मतलब यह, कि भिन्न-भिन्न भवमें मनुष्य का एक दूसरेके साथ भिन्न-भिन्न प्रकारका सबन्ध होता है ।*

'नसाजाइ नसाजोणी नतं ठाणं न तं कुलं ।
न जाया न मूया जत्थ, सव्वे जीवा अणंतसो ।.'

*अर्थात्—'ऐसी कोई जाति नहीं, ऐसी कोई योनि नहीं, ऐसा कोई स्थान नहीं, ऐसा कोई कुल नहीं, जिसमें अनन्त प्राणी जन्म ग्रहण करके मरणको न प्राप्त हुए हों । अर्थात्-व्यवहार-राशिमें घूमते हुए जीवको इस संसार में भ्रमण करते हुए अनन्त काल व्यतीत हो चुका है । इसीलिये जीवको अनन्त बार भिन्न-भिन्न जाति, योनि, स्थान और कुलमें आना पड़ता है । इसीसे मनुष्यको चाहिये कि, किसीसे राग या द्वेष न रखे । मन में समता धारण किये हुए सबके साथ व्यवहार करे ।*

यही सब सोचकर मुझे वैराग्य हो आया । इसकी कथा मैं तुम्हें विस्तारके साथ सुनाता हूँ—सुनो ।

# पाँचवाँ परिच्छेद ।

लक्ष्मीके लीला-मन्दिरके समान श्रीमन्दिरपुर नामक नगरमें एक बड़े ही पराक्रमी राजा रहते थे। उनका नाम सुरकान्त था। वे बड़ेही स्त्री-लम्पट और कपटी थे। उसी नगरमें सोमश्रेष्ठी नामका एक बड़ा भारी सेठ रहता था, जो बड़ाही उदार और राजाका प्रेमपात्र था। उसकी स्त्री सोमश्री रूपमें लक्ष्मीसे भी बढ़ी चढ़ी थी। उसके एक पुत्र था, जिसका नाम श्रीदत्त था। उस लड़केका भी विवाह हो चुका था। उसकी स्त्रीका नाम श्रीमती था। वे चारों बड़े ही सुख-से रहते थे। ऐसा मालूम पड़ता था, मानों पुण्यके योगसेही उनका यह सम्बन्ध हुआ है। कहा भी है, कि—

'यस्य पुत्रो वशीभूतो भार्य्या छायानुवर्त्तिनी।
विभवेष्वपि सन्तोषस्तस्य स्वर्ग इहैव हि॥'

*अर्थात्—जिसका पुत्र आज्ञाकारी, स्त्री इच्छानुसार चलने-वाली और जिसे ऐश्वर्य न होने पर भी सन्तोष है, उसको इस संसारमेंही स्वर्ग प्राप्त है।*

एक दिनकी बात है, कि सोमश्रेष्ठी अपनी स्त्रीके साथ बागमें

टहलने गया हुआ था। दैवयोगसे राजा भी वहाँ आ पहुँचे। सोमश्रीको देखते ही राजाका मन हाथसे निकल गया और वे सोमश्रीको ज़बरदस्ती पकड़ कर अपने महलमें ले गये। कहा भी है, कि—

"यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्व मविवेकिता।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्?"

*अर्थात्—यौवन, धन-सम्पत्ति, प्रभुता और अविवेक इनमें से यदि कोई एक मनुष्यके पास हो, तो वह अनर्थ कर डालता है; फिर जहाँ ये चारों हों, वहाँ भला कौनसी आफ़त न ढा देंगे?*

राजा, जिसे प्रजाकी रक्षा करनी चाहिये, वह इन्हीं चारों दुर्गुणोंके प्रभावसे कभी-कभी बड़ा अत्याचार करता है। पर राज-लक्ष्मी-रूपिणी वनभूमिके लिये अन्याय दावाग्निकाही काम करता है—अर्थात् जो राजा अन्याय और अत्याचार करता है, उसका राज्य चौपट हो जाता है। यह नीति-शास्त्रका वचन है। इस नीति-वचनको सदा स्मरण रखनेवाला और राज्यकी बढ़ती चाहनेवाला राजा कभी किसी परायी नारीपर मन नहीं ललचाता। औरोंको तो राजा अन्याय करनेसे रोकता है, फिर यदि राजा ही अन्याय करे, तो इसकी फ़र्याद किसके पास की जाये?

सेठने अपने दीवानको राजाके पास भेजकर इन्हीं सब नीतिके वचनोंकी याद दिलाते हुए उनसे सोमश्रीको छोड़ देनेकी प्रार्थना

करवायी ; पर राजाने एक न सुनी—उलटे दीवानकोही खूब गाली-गलोज देकर अपने वहाँसे खदेड़ दिया। ओह! धिक्कार है, इस चित्तकी वृत्तिको, जो अन्याय करते हुए भी किसीकी भली सीख सुनना नहीं चाहती।

दीवानने सेठके पास आकर कहा,—"सेठजी! अब तो कोई उपाय नहीं नज़र आता। हाथीका कान छूना और राजाको मनमानी करनेसे रोकना, दोनों ही काम कठिन हैं। जो रक्षक हो, वही यदि भक्षक बन जाये ; जो रखवाली करनेके लिये रखा गया हो, वही यदि चोर हो जाये ; तो फिर लाख होशियार होते हुए भी आदमी उससे कैसे अपना बचाव कर सकता है। कहा भी है, कि—

'माता यदि विषं दद्यात् विक्रीणीत पिता सुतम्।
राजा हरति सर्वस्वं का तत्र परिवेदना ?'

*अर्थात्--यदि माता ही पुत्रको विष दे दे और पिता उसे बेच डाले अथवा राजा अपना सर्वस्व हरण कर ले, तो फिर रोना किस लिये ? कहनेका मतलब यह, कि जैसे माता-पिता के द्वारा पुत्रकी रक्षा होनी चाहिये, वैसे ही राजाके द्वारा प्रजा की रक्षा होनी उचित है। इसके बदले यदि ये ही अपने पुत्र या प्रजाके प्राणोंके ग्राहक बन जायें, तो इसके लिये सोच कर के ही क्या होगा ?'*

दीवानकी इन बातोंको सुनकर सेठको बड़ा दुःख हुआ।

उसने बड़े ही दुःखित चित्तसे अपने पुत्रको बुलाकर कहा,—"बेटा! अब तो मैं यहाँ नहीं रह सकता। कारण, दुर्भाग्यस मेरा ऐसा अपमान हुआ, जिसे मनुष्य तो क्या पशु-पक्षी भी नहीं सह सकते। स्त्रीका अपमान बड़ाही दुःखदायी होता है। अब तो इस अपमानका बदला लेना ही मेरे जीवनका व्रत हो गया। मुझे तो अब यही एक उपाय दिखलाई देता है, कि मैं यहाँसे काफ़ी धन लेकर किसी दूसरे राजाके पास चला जाऊँ और उस को ख़ातिर कर, उसे अपनी ओर मिलाकर, उसीसे इसकी पूरी-पूरी मरम्मत करवाऊँ। राजाके साथ भिड़ना, राजाओंका ही काम है।"

अपने पुत्रसे ऐसा कह, अपनी जमामेंसे पाँच लाख रुपये लेकर वह सेठ किसी दूसरे देशमें चला गया। सच है, अपनी प्यारी स्त्रीके लिये क्या-क्या नहीं करते? कहा भी है, कि—

> दुष्कराण्यपि कुर्वन्ति प्रियाः प्राणप्रियाकृते।
> किं नाब्धिं लंघयमाद्धः पाण्डवा द्रौपदी कृते!

*अर्थात्—अपनी प्राण-प्यारी के लिये आदमी कठिन से-कठिन काम करने को तैयार हो जाता है पाण्डवोंने द्रौपदी के लिये कौनसा समुद्र नहीं नाँव डाला?*

---

# छठा परिच्छेद

उधर सेठ परदेश गया, इधर उसके पुत्र श्रीदत्तकी स्त्री श्रीमतीके गर्भसे एक पुत्री उत्पन्न हुई। यह देख, श्रीदत्तने अपने मनमें विचार किया,—"मेरा भाग्यही मुझसे रूठा हुआ है। इसीसे दुःखपर दुःखके कारण उपस्थित होते चले जाते हैं। एक तो माता-पिताके वियोग, द्रव्यकी हानि, राजाके वैर आदिसे जी जलाहो हुआ था—अबके बड़ी आशा थी, कि मेरे पुत्र होगा, सो पुत्री ही हुई। मानों दुःखमें जो कुछ कसर थी, वह पूरी हो गयी। अब आगे न मालूम क्या-क्या होने-वाला है?"

इसी तरह सोच-विचार और खेदमें पड़े हुए श्रीदत्तके दस दिन बड़े दुःखसे बीते। ग्यारहवें दिन उसके मित्र शङ्खदत्तने उसे इस प्रकार उदास देख, उससे इसका कारण पूछा। श्रीदत्तने अपने मित्रको सच्ची-सच्ची बात बतला दी। सब सुनकर शंख-दत्तने कहा,—"भाई श्रीदत्त! धनके लिये तो तुम ज़रा भी सोच न करो। हमलोग जब चाहें जहाजपर सवार होकर परदेश

चले जा सकते हैं और वहाँसे मनमाना धन कमाकर ले आ सकते हैं। फिर हम लोग घर आकर आधा-आधा बाँट लेंगे।"

श्रीदत्तने यह बात स्वीकार कर ली और दोनों मित्रोंकी परदेश जानेकी सलाह पक्की हो गयी। अन्तमें एक दिन अपने हित-मित्रों, आत्मीय-स्वजनों और सम्बन्धियोंसे विदा लेकर वे लोग जहाज़पर सवार हो गये और कुछही दिनोंमें सिंहल-द्वीपमें जा पहुँचे। वहाँ वे नौ-दस वर्षों तक रह गये इसके बाद कटाह-द्वीपमें बहुत लाभ होनेकी आशा देखकर वे वहाँ चले गये। तरह-तरहके बनज-ब्यौपार करते हुए वे वहाँ भी दो वर्ष रहे। इसी तरह क्रमशः वाणिज्य-व्यापार करते हुए उन्होंने आठ करोड़ रुपये पैदा किये। शुभकर्म और उद्योगका संयोग होनेपर द्रव्य उपार्जन करना कोई बड़ी बात नहीं है। इस तरह खूब माल पैदा करके वे दोनों जहाज़पर चढ़कर घर लौटने लगे। एक दिन जहाज़ समुद्रमें चला जा रहा था, इसी समय उन्होंने पानीमें एक सुन्दर पेटी बहती हुई देखी। उन्होंने उसे देख, कौतूहल-वश नाविकोंसे उसे छनवाकर मँगवा लिया। दोनों मित्रोंमें यही तै पाया था, कि खोलने पर उस पेटी में से जितना और जो कुछ निकलेगा, उसमें हम लोग आधा-आधा बाँट लेंगे। बहुत से आदमियों के सामने वह पेटी खोली गयी। खोलने पर उसमें नीमके पत्तोंसे ढंकी हुई, नीले रंग के शरीरवाली, एक बेहोश लड़की दिखलाई पड़ी। उसे देखते ही सब लोग आश्चर्य में पड़ गये और "यह क्या मामला है?" यही कह-कह कर एक दूसरे

का मुंह देखने लगे। कुछ सोच-विचार कर शंखदत्त ने कहा,—"मालूम होता है, कि इस लड़की को किसी विषधर साँपने काट खाया है, इसीसे किसी ने इसे यों सन्दूक में बन्द कर समुद्र में फेंक दिया है।"

यही सोचकर शंखदत्त, जो साँप का विष उतारने का मंत्र जानता था, हाथ में जल लेकर मंत्र पढ़ने और उस लड़की के बदन पर जलके छींटे देने लगा। थोड़ी ही देर में वह लड़की होश में आकर उठ बैठी। यह देखते ही सब लोग प्रसन्न हो गये। शंखदत्त ने कहा,—"मैंने ही इसे जिलाया है, इस लिये अब यह मेरी हो गयी। मैं ही इसके साथ शादी करूँगा।"

श्रीदत्तने कहा,—"ख़बरदार! ऐसी बात न कहना हम लोगोंने इस पेटीके अन्दर पायी जाने वाली चीज़ आधी-आधी बाँट लेनेका निश्चय किया था। इसलिये इस पर हम लोगोंका बराबर-बराबर अधिकार है। अब मैं तुमसे कहता हूँ, कि अपने आधे हिस्से के बदलेमें तुम मेरा द्रव्य ले लो और इस कन्यापर से अपना वह आधा हिस्सा छोड़ दो; क्योंकि मैं स्वयं इसके साथ विवाह करना चाहता हूँ।"

इसी तरह बातों ही बातों में उनमें खूब झगड़ा हो गया। मुद्दतों की प्रीति क्षण-भरमें एक स्त्री के कारण टूट गयी। जैसे मज़बूत से मज़बूत ताले को छोटीसी कुञ्जी खोल डालती है, वैसे ही चाहे कितनी ही, गहरी प्रीति क्यों न हो; पर औरतों का मामला बीचमें आ पड़नेसे मित्र भी एक दूसरेके शत्रु बन जाते हैं।

जब इन दोनोंमें खूब तू तू मैं-मैं होने लगी और मार-पीट की नौबत आ पहुँची, तब जहाज के खलासियों ने बीच-बचाव करते हुए कहा,—"देखो, इस तरह जहाज़ पर हल्ला-गुल्ला न करो। दो दिन बाद यह जहाज सुवर्णकूल नामक बन्दरगाह पर पहुँच जायेगा। वहीं उतर कर पाँच पञ्चोंको इकट्ठा करके तुम लोग अपने झगड़े का निपटारा करा लेना।" उनकी बात सुन, शंखदत्त चुप हो गया। अबके श्रीदत्तने अपने मनमें सोचा,—"इस कन्या को तो शंखदत्तने ही जिलाया है, इसलिये पंच तो यही फैसला करेंगे, कि यह कन्या शंखदत्त को ही मिलनी चाहिये। इस लिये सुवर्णकूल पहुँचने के पहले ही कोई कपट-रचना करनी चाहिये।"

मन-ही-मन ऐसा विचार कर, श्रीदत्तने शंखदत्तसे खूब प्रेम भरी बातें करनी आरम्भ की और उसके मनमें इस बातका पूरा-पूरा विश्वास उत्पन्न कर दिया, कि अब उसके मनमें ज़रा भी डाह या क्रोध नहीं है। क्रमशः दिन बीता—रात हुई। उस समय जहाज के एक कमरे की खिड़की के पास बैठे हुए श्रीदत्तने पुकारा,—"अरे भाई! शंखदत्त! कहाँ हो? ज़रा इधर तो आओ। यह देखो, एक बड़ा भारी अचम्भा नज़र आ रहा है। एक आठ मुँहवाली मछली बहती चली जाती है।"

इस अचम्भे का तमाशा देखनेके लिये शंखदत्त दौड़ा हुआ उसके पास आया और समुद्र की ओर मुंह करके देखने लगा, इतने में उस विश्वास घाती मित्रने उसे इस जोरका धक्का दिया, कि वह तुरन्त ही समुद्रमें गिर पड़ा।

उस विश्वासघाती मित्रने उसे इस जोरका धक्का दिया, कि वह तुरन्त ही समुद्रमें गिर पड़ा।

ओह! इस स्त्रीको धिक्कार है, जिसके पीछे लोग अपने लोक-पर लोक बिगाड़ देते और मित्र-द्रोह आदि भयंकर पाप कर बैठते हैं।

दुष्ट-बुद्धि श्रीदत्त इस तरह अपने मित्रको समुद्र में गिराकर फूला अङ्ग न समाया। उसने सोचा, कि चलो, बला टल गयी अब मैं इस स्त्री से सानन्द विवाह कर लूँगा। सवेरा होते ही उसने लोक-दिखावेके लिये चिल्लाना शुरू किया,—"ऐं! यह क्या? मेरा मित्र कहाँ चला गया? हाय! वह तो कहीं दिख-लाई ही नहीं पड़ता! हाय, हाय, अब मैं मित्र बिना कौनसा मुँह लेकर घर लौटूँगा? कैसे जी सकूँगा?" इस तरह का आडम्बर दिखलाता हुआ वह बड़े ज़ोरसे रोने लगा। क्रमशः जहाज बन्दरगाह पर आ पहुँचा।

वह पहुँच कर श्रीदत्तने वहाँके राजा को एक हाथी नजरा-रानेमें दिया, जिससे राजा बड़ा खुश हुआ और उसने इसको बड़ी ख़ातिर से अपने यहाँ ठहरनेका हुक्म दिया। इसके बाद राजाकी ओरसे उसे उस हाथी का मूल्य भी मिला और व्यौ-पारी मालपर का महसूल माफ़ कर दिया गया। कुछ दिन वहीं रहकर श्रीदत्तने खूब व्यापार-वाणिज्य फैलाया। इसी अवसर में उसने उस सन्दूक में गयी हुई कन्या के साथ विवाह करने का निश्चय किया। विवाह के लिये सामग्रियाँ इकट्ठी करने के लिये उसे अक्सर राजदरबार में जाना पड़ता था। वहाँ रूपमें रतिको भी लजाने वाली एक परम सुन्दरी चमर-धारिणी को देखकर उसने किसी से उसका हाल पूछा। उसने

कहा,—"यह सुवर्ण रेखा नामकी प्रसिद्ध वेश्या है। यह राजा की रखेली है। पचास हजार रुपये लिये बिना यह दूसरे से कभी बात भी नहीं करती।"

यह सुनते ही उसने पचास हज़ार रुपये देकर उससे बातें करने का निश्चय किया और एक दिन उसे और उस पायी हुई कन्या को साथ लेकर जंगल में घूमने चला गया। वहाँ चम्पे के पेड़ नीचे अपनी दोनों बग़ल में दोनों को बैठाकर वह तरह तरह की हँसी-दिल्लगी करने लगा। इतने में एक बन्दर बहुत सी बँदरियों को साथ लिये हुए वहाँ आया और आनन्द से कामविलास करने लगा। यह देख, श्रीदत्तने सुवर्ण रेखा से पूछा,—"इस बन्दर की क्या ये सब स्त्रियाँ अपनी ही हैं?"

वेश्याने कहा,—"बन्दरों में इसकी कौनसी खोज पूछ है? इनमें कोई इसकी माता होगी, कोई बहन होगी, कोई पुत्री होगी। आखिर ये आदमी थोड़े ही हैं?"

यह सुन, श्रीदत्तका चित्त विरक्त सा होगया। उसने बड़े ज़ोरसे कहा,—"इस पशु जन्मको धिक्कार है, जिसमें कोई अपनी माँ, बहन और बेटी को भी नहीं पहचानता, इस जीवन को बार-बार धिक्कार है।"

वह वानर चुप-चाप अपने मनसे चला जा रहा था; पर एका-एक श्रीदत्तकी बातें कानमें पड़ते ही वह ठिठक कर खड़ हो गया और श्रीदत्तकी ओर फिर कर कहने लगा,—"रे दुष्ट, दुराचारी और परायी निन्दा करने वाला! तू पर्वत पर क्या दृष्टि डालता

श्रीदत्तकी ओर फिर कर कहने लगा,—"रे दुष्ट, दुराचारी और परायी निन्दा बकनेवाला ! तू पर्वत पर क्या दृष्टि डालता

है? जरा अपने पैरोंके पास तो देख। तू अपनी माँ और पुत्री को अपनी स्त्री मानकर दोनों बग़ल बैठाये हुए है और एक मित्रको समुद्र में फैंक आया है, तू क्या बड़-बड़ करता है? व्यर्थ क्यों मेरी निन्दा करता है!" यह कह, वह बन्दर अपनी टोलीमें जा मिला।

उसके इन वचनोंसे श्रीदत्तके कलेजे में वज्रकासा आघात हुआ। उसने अपने मनमें विचार किया,—"ओह! यह अभागा बन्दर कैसी बेतुकी बात बक गया! समुद्र में बही जाती हुई यह लड़की मेरी पुत्री कैसे हुई! यह सुवर्ण रेखा नामकी गणिका मेरी माता क्योंकर हुई! मेरी माता सोमश्री तो जरा लम्बे क़दकी थी—उसके शरीरका रङ्ग साँवला था। यह सुन्दरी तो नीच वेश्या है। यह भला कभी मेरी माता हो सकती है। वयस के लिहाजसे यदि यह कमसिन औरत मेरी पुत्री हो, तो हो भी सकती है; पर यह वेश्या तो कदापि मेरी माता नहीं हो सकती। तो भी जरा पूछकर सन्देह मिटा लेना चाहिये।" यही सोचकर उसने उस वेश्या से यह बात कही। सुनते ही वह बोल उठी,—"वाह! तुमने भी क्या खूब पहचाना! इतने बुद्धिमान होकर एक पशुके बहकावे में चले आये।"

यद्यपि उस वेश्या ने इतनी आसानी से वह बात काट दी, तथापि श्रीदत्तके चित्त की शंका दूर नहीं हुई। उसने तुरंत उन स्त्रियों का साथ छोड़ दिया और इस मामले का ठीक-ठीक पता लगानेके लिये निकल पड़ा। सच है; जिस कार्य में सन्देह पैदा हो जाता है, उसमें बुद्धिमान् लोग पैर आगे नहीं बढ़ाते। बिना

पानी की थाह पाये, कोई चतुर आदमी कभी पानी के अन्दर नहीं जाता। इसी तरह विचारवान् पुरुष ऐसे कामों में हाथ ही नहीं डालते, जिनमें अनर्थ की आशंका हो।

ख़ैर, बहुत इधर-उधर घूमता हुआ वह एक मुनिके पास पहुँचा। वहाँ पहुँच कर उसने बड़े भक्ति भावसे मुनिको प्रणाम कर कहा,—"स्वामी! बन्दर ने मुझे बड़े भ्रममें डाल रखा है। मेरा वह भ्रम छुड़ाइये।

मुनिने कहा,—"जैसे सूर्य इस पृथ्वीको प्रकाशित करता है, उसी तरह सारे संसारमें अपने ज्ञानका प्रकाश फलाने वाले मेरे केवल-ज्ञानी गुरु इस देशमें हैं। अपने अवधिज्ञानके सहारे मुझे जो मालूम पड़ा है, वही मैं तुमसे कहता हूँ। उस वानरने जो कुछ कहा है, वह सर्वज्ञ के वचन के समाने सत्य है।"

श्रीदत्तने कहा,—"सो कैसे? कृपाकर विस्तार पूर्वक सुनाकर मेरा भ्रम दूर कीजिये।"

मुनि,—"अच्छा, मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे खूब मन लगाकर सुनो। तुम्हारा पिता अपनी स्त्री को छुड़ाने और उसको बल-पूर्वक हर ले जानेवाले राजा से वदला लेनेके इरादेसे कुछ रुपये लेकर चुपचाप घर से वाहर निकला और समर नामके एक पल्ली-पति (सामन्त राजा) के पास चला गया। वहाँ पहुँच कर, उसे काफ़ी रुपये देकर तुम्हारे पिताने अपनी मुट्ठी में कर लिया और एक बहुत बड़ी सेना लेकर श्री मन्दिरपुर की ओर भेजा। उस पल्ली-पतिकी सेनाके डरसे श्रीमन्दिरपुरके

लोग इधर-उधर भाग चले। तुम्हारी स्त्रीभी अपनी लड़कीको लेकर गंगा-किनारे बसे हुए सिंहपुर नामक नगरमें अपने पिताके घर चली गयी। वहाँ वह बहुत दिनों तक अपने भाईके आश्रममें पड़ी रही; क्योंकि पतिसे बिछुड़ने पर स्त्रियों को बाप-भाई का ही सहारा रहता है। एक दिन आषाढ़ के महीने में तुम्हारी लड़की को एक जहरीले साँप ने काट खाया, जिससे वह तत्काल मर गयी। लोगोंने लाख उपचार किये; पर उसका विष नहीं उतरा। सर्पके काटे हुए मनुष्य को तुरत नहीं जलाना चाहिये; क्योंकि यदि आयु हुई, तो वह फिर जी जा सकता है, यह सोच कर उन्होंने उसकी लाशको नीमके पत्तों में लपेट कर एक बड़ीही सुन्दर पेटीमें बन्द कर दिया और गंगामें लेजाकर बहवा दिया। उसी समय गंगामें बड़े जोरकी बाढ़ आयी और वह उस पेटी को बड़ी तेजी से बहा ले चली। क्रमसे वह समुद्र में पहुच गयी और तुम्हारे हाथ लगी। इसके बादका हाल तुम आप ही जानते हो। इसी लिये यह लड़की तुम्हारी पुत्री ही है, इसमें सन्देह नहीं।"

इतनी कथा सुनाकर मुनि महाराज फिर कहने लगे,—"अब यह तुम्हारी माता कैसे है, इसका भी हाल सुन लो। तुम्हारे पिताके भेजे हुए उस पल्ली-पतिने राजा सुरकान्तको बहुत बड़ी हार दी। वे भाग चले। तुम्हारा पिता इसी लड़ाई में मारा गया। बेचारा स्त्रीका उद्धार करने आया और जानसे भी हाथ धो बैठा। सच है, आदमी कुछ सोचता है और दैव कुछ करता है।

"जो हो, राजा सुरकान्त प्राण लेकर भाग गये। तब बेचारी सोमश्रीको—अर्थात् तुम्हारी माता को—उस पल्ली-पतिके भील-सैनिकोंने पकड़ लिया। इसके बाद सारे नगरमें भयङ्कर लूट पाट मचाकर वह सेना अपने-अपने डेरे-तम्बुओं में जाकर विश्राम करने लगी। बेचारी सोमश्री दिन-भर उन्हीं सैनिकों के पास पड़ी रही और रातको मौक़ा पाकर निकल भागी। जंगल-जंगल भटकते-भटकते उसने एक जंगली पेड़का फल खा लिया, उसे खाते ही वह बड़ी गोरी और ठिंगने क़दकी हो गयी। सच है, मणि, मन्त्र और औषधिके गुणोंकी कोई थाह नहीं पा सकता। उसी समय उस राहसे जाते हुए कुछ व्यापारियों की दृष्टि उस पर पड़ गयी। उन्होंने उसे सुन्दर और अकेली देख, अचम्भे में आकर पूछा,—"तुम देवाङ्गना हो, नाग-कन्या हो, वनदेवी हो, स्थलदेवी हो, जल-देवी हो या कौन हो? तुम मानवी तो नहीं मालूम होती।' यह सुन, वह बड़ी दीनता के साथ बोली,—'मैं कोई देवी नहीं हूँ; बल्कि तुम्हारी ही तरह हाड़-माँस की बनी हुई मानवी हूँ। यह रूप ही मेरे अन्धकूप में पड़ने का कारण बन गया है। भाग्य के दोषसे यह गुण भी मेरे लिये दोष ही हो गया है।' यह सुन, उन्होंने कहा,—'अच्छा, आओ, तुम हमारे साथ चलो—हम लोग तुम्हें बड़े आरामसे रखेंगे, यह कह, वे लोग बड़ी प्रसन्नताके साथ उसे अपने घर ले चले और रत्नकी भाँति उसकी रक्षा करने लगे।

"कुछ दिन बीतते-न-बीतते उन लोगों की नियत बिगड़ गयी

और प्रत्येक व्यापारी उसकी खूबसूरती देखकर उसे अपनी स्त्री बनानेकी बात सोचने लगा! सामने भोजन की थाली देखकर किसके मुँहसे लार नहीं टपकने लगती? क्रमशः वे लोग सुवर्ण-कुल नामक बन्दरगाहमें आ पहुँचे। वहाँ उन्होंने बहुतसा तिजारती माल खरीदा। अन्तमें किसी मालकी आमदनी बहुत हो जानेसे उसका भाव उतर गया और बड़ी उतावली के साथ उसे खरीदने की धुनमें लगे। व्यापारी तो हमेशः सस्ता माल खरीदना चाहते हैं। परन्तु उनकी जमा-पूजी पहले ही चुक गयी थी, इसलिये वे रुपये की चिन्ता में पड़ गये। लाचार, उन्होंने अपने साथ लायी हुई उस परम रूपवती स्त्रीको एक वेश्या के हाथ बेंच दिया। लोभको रोकना आदमीके लिये—खासकर बनियोंके लिये—बड़ाही मुश्किल है। खैर, उस स्त्रीको विभ्रमवती नामकी वेश्याने लाख रुपये देकर खरीद लिया; क्योंकि वेश्याओंके लिये तो खूबसूरत और जवान औरतें कामधेनु के समान ही होती हैं, उसी दिनसे सोमश्री का नाम सुवर्णरेखा हो गया। प्रायः इस तरह का नाम बदलौअल हो ही जाता है। थोड़े ही दिनों में विभ्रमवती ने उसे नाचना-गाना सिखला दिया। संगके प्रभावसे सुवर्णरेखा ठीक विभ्रमवतीके समान ही चतुर वेश्या बन गयी। ओह! इस कुसङ्गति को धिक्कार है, जिसके प्रभाव से इस कुलवती स्त्रीने भी बात-की-बात में वेश्यापन सीख लिया। यह भाग्यका ही फेर था, कि बेचारीके एक ही जन्ममें दो जन्म हुए।

"उसके नाचने गानेकी तमाम शुहरत फैल गयी। राजाने भी यह प्रशंसा सुनी और उसको बुलवाकर उसका नाच-गान देखा, फिर तो वे उसपर ऐसे लट्टू हुए, कि उन्होंने उसे अपनी चमर-धारिणी बना लिया। इस लिये हे श्रीदत्त! यह स्त्री तुम्हारी माता ही है। कर्म-धर्म-संयोगसे इसका ऐसा रूप हो गया है। रूप रङ्ग में फ़र्क़ पड़ जानेपर पहचानना बड़ा कठिन हो जाता है। इसीसे तुम उसे नहीं पहचान सके; परन्तु उसने तुम्हें पहचान लिया; लेकिन लोभ और लज्जा के मारे कुछ भी नहीं बोली। सचमुच लोभ बड़ा ही बुरा होता है। धिक्कार है, इस वेश्या-वृत्तिको, जिसके कारण अपने बेटेको पहचान कर भी माता उसके साथ भोग विलास करने के लिये तैयार हो गयी। ऐसी निकृष्ट वेश्याओंकी पण्डितोंने जो इतनी निन्दा की है, वह उचितही है।

जब मुनि महाराजने इस प्रकारकी कथा सुनायी, तब तो श्रीदत्तको बड़ाही विस्मय और विषाद हुआ। उसने हाथ जोड़कर कहा,—"हे तीनों जगत् का हाल जानने वाले! यह सब हाल उस बन्दर को कैसे मालूम हुआ! मुझ अन्धकूप में गिरने वालेका उद्धार करनेके लिये उसने क्योंकर मनुष्योंकी सी भाषामें मुझे चेतावनी दी।"

मुनि महाराज बोले,—"तुम्हारा पिता सोमश्री का ही ध्यान करता हुआ, लड़ाईमें तीर खाकर मारा गया था, इसी लिये वह मरकर प्रेत-योनि को प्राप्त हुआ। वही घूमता-फिरता तुम जहाँ

जंगलमें बैठे हुए थे, वहाँ आ पहुँचा। आते ही उसने देखा, कि तुम तो अपनी माता को ही वेश्या समझ कर उसपर रीझे हुए हो। इसी लिये उसने उस बन्दर के शरीरमें प्रवेश कर तुम्हें वैसा उपदेश दिया। दूसरे भवमें चले जानेपर भी पिता अपने पुत्रकी भलाईकी चिन्तासे दूर नहीं होता। वह बन्दर बना हुआ प्रेत अभी अपनी पुरानी प्रीतिके कारण तुम्हारे देखते-देखते इस स्त्री को अपनी पीठपर चढ़ाकर ले जायेगा।"

मुनि महाराज ने इतना कहाही था, कि वह बन्दर आया और जैसे सिंह अम्बिका (दुर्गा) को अपनी पीठपर बैठा लेता है, वैसेही सुवर्ण रेखाको अपनी पीठपर बैठाकर ले चला। देखते-देखते वे दोनों श्रीदत्तकी आँखोंसे ओझल हो गये।

"ओह! यह कैसी विचित्र लीला है। कैसा आश्चर्य है कैसी अद्भुत भव-विडम्बना है।" यह कहता, सिर धुनाता और हाथ मलता हुआ श्रीदत्त अपनी पुत्रीको साथ लिये हुए अपने घर आया।

---

# सातवाँ परिच्छेद

इधर सुवर्ण रेखाको लेकर जब श्रीदत्त वनमें चला आया, तब सुवर्णकी दासियोंने घर आकर उसकी माँ (बूढ़ी नायका) से कहा,—"श्रीदत्त नामक एक व्यापारी पचास हजार रुपये देना स्वीकार कर उसे लेकर जंगलमें चला गया है।" यह सुनकर वह बड़ी प्रसन्न हुई, पर जब सुवर्ण रेखाके लौटने में बड़ी देर हुई; तब उसने दासियोंको सुवर्ण रेखाका समाचार लानेके लिये भेजा। दासियाँ उसी समय सुवर्ण रेखाकी खोजमें निकल पड़ीं।

बड़ी देरतक इधर-उधर खोज-ढूंढ़ करते रहनेके बाद उन्होंने श्रीदत्त को एक दूकान पर बैठा देख, उसके पास जाकर उससे सुवर्ण रेखाका समाचार पूछा। श्रीदत्तने झटपट उत्तर दिया,—"मैं क्या जानूँ, कि कहाँ गयी? मैं क्या उसका कोई गुलाम था, जो उसके पीछे-पीछे डोलता-फिरता और देखता-चलता, कि वह कहाँ जाती और क्या करती है।"

दासियोंने बुढ़िया बीबीसे ज्यों की त्यों यही बातें कह सुनायी. सुनतेही वह क्रोधसे अन्धी हो गयी और राजासे फर्याद

करने आयी, आकर बड़ी विनयके साथ कहने लगी,—"महाराज! मैं तो लुट गयी—एकबारगी लुट गयी—बरबाद हो गयी—किसी काम लायक नहीं रही।" राजाने पूछा,—"क्यों!" क्या हुआ। कैसे लुट गयी? क्योंकर लुट गयी? किसने लूटा?

बुढ़िया बोली,—"मेरी सोनेसी सुन्दर सुवर्णरेखाको श्रीदत्त नामका व्यापारी चुराकर ले भागा।"

राजा ने तुरंतही श्रीदत्तको बुला भेजा और उसके आनेपर

राजाने तुरतही श्रीदत्तको बुला भेजा और उसके आनेपर इस चोरीके सम्बन्धमें पूछना आरम्भ किया। परन्तु उसने यही सोचकर कुछ जवाब नहीं दिया, कि यदि मैं सच्ची बातभी बतलाऊँगा, तो ये लोग नहीं मानेंगे; क्योंकि कहा हुआ, है, कि—

"असम्भाव्यं न वक्तव्यं प्रत्यक्षं यदि दृश्यते।
यथा वानरसंगीतं यथा तरति सा शिला॥"

*अर्थात्—यदि अनहोनी बात आँखों देखी हो, तोभी किसीसे न कहे। जैसे यदि कहीं बन्दरको गाना गाते और पत्थरको पानीमें तैरते देख भी ले, तो किसी से ऐसा न कहे, कि मैंने ऐसा होते देखा है।*

उसे यों चुप्पी साधे देख, राजाको बड़ा गुस्सा चढ़ आया और उन्होंने श्रीदत्तको क़ैदख़ानेमें भेजकर उसका सारा माल मता ज़ब्त कर लिया। साथही उन्होंने उसकी लड़कीको अपने महलों-

में लाकर दासियों के साथ रख दिया। सच है, विधाता और राजाकी मित्रताका कोई विश्वास नहीं। इनके दोस्त और दुश्मन बनते देर नहीं लगती।

जब श्रीदत्तको क़ैदख़ानेमें बड़ी तकलीफ़ होने लगी, तब उसने एक पहरेदारकी मार्फ़त राजाके पास यह कहला भेजा, कि मैं सारा हाल सच-सच बतला देनेको तैयार हूँ। यह सुन, राजाने उसे क़ैदख़ानेसे बुलवा मंगवाया और सारा हाल बयान करनेको कहा। उसने कहा,—“महाराज! उस स्त्रीको तो जंगलका एक बन्दर ले गया।” यह सुनते ही सारे दरबार के लोग ख़ूब ज़ोर से ठहाका मार कर हँसने लगे। सब लोग विस्मयके साथ कहने लगे,—“अजी, कहीं ऐसा भी हो सकता है? यह सब इस दुष्टकी चालबाज़ी है।” सबको ऐसा कहते सुन और आप भी उसकी बातका विश्वास नहीं करते हुए राजाने उसे प्राणदण्डका हुक्म दे दिया। ठीक ही कहा है, कि बड़े आदमियोंके रंज और खुश होनेमें क्या देर लगती है?

राजाका हुक्म पाकर कई जल्लाद उसे पकड़कर वधभूमिकी ओर ले चले। वहाँ पहुँचकर श्रीदत्त अपने मनमें विचार करने लगा,—“ओह! मित्रका वध करने और माता तथा पुत्रीके साथ भोग करनेकी इच्छा करनेसे ही मुझे यह दण्ड आज मिल रहा है। मेरा पाप तत्काल फल गया। विधि-विडम्बना तो देखो, कि मैं सच कहनेपर भी मारा जाता हूँ। जैसे उमडते हुए समुद्रको कोई पार नहीं पा सकता, वैसेही कुपित विधाताकी गतिमें

भी कोई बाधा नहीं पहुँचा सकता। सच है, किसी दिन कोई समुद्रका प्रवाह रोक दे, तो भलेही रोक दे; परन्तु किये हुए कर्म्मोंके परिणामको कोई आनेसे नहीं रोक सकता।"

इसी समय उसके पूर्व-पुण्यों का कुछ उदय हो आया। इसी लिये कहींसे घूमते-फिरते हुए मुनिचन्द्र नामके केवली वहाँ पधारे। ज्योंही मालीने जाकर महाराजको ख़बर दी, कि उद्यानमें केवली मुनिके चरण आये हैं, त्यों ही वे दौड़े हुए उनकी पद-वन्दना करनेको आये। पास पहुँच, मुनिकी वन्दना कर, राजाने उनसे देशना सुनाने की प्रार्थना की। यह सुन, केवलीने कहा,—"जैसे बन्दरके लिये मोतियोंका हार बेकार है, वैसेही जिसके धर्म और न्याय नहीं है, उसके लिये देशना किस कामकी!" यह सुन, राजाने, बड़ी घबराहटके साथ पूछा,—"प्रभो! यह कैसी बात है? मैंने कौनसा अन्याय किया है?"

गुरु,—"तुमने सच बात बतलाने पर भी श्रीदत्तको क्यों प्राणदण्डकी आज्ञा दी?"

यह सुनतेही राजाने तुरत अपने सेवकोंको भेजकर श्रीदत्तको वधस्थानसे बुलवा लिया। उसके आनेपर उन्होंने गुरुसे पूछा, कि श्रीदत्तकी बात क्योंकर सच थी, सो बतलाइये। इतनेमें सुवर्णरेखाको अपनी पीठपर चढ़ाकर ले जानेवाला वह बन्दर भी वहीं आ पहुँचा। उस समय सुवर्णरेखा उसकी पीठपर ही मौजूद थी। वह आतेही सुवर्णरेखाको नीचे उतार कर वहीं बैठ गया। राजा आदि सभी लोग यह अवस्था देखकर आश्चर्यमें आ गये।

अब तो सबको विश्वास हो गया, कि श्रीदत्तने जो कुछ कहा था वह बिलकुल ठीक था। इसके बाद उन लोगोंने मुनि महाराजसे सर्व पूर्व-वृत्तान्त पूछ कर मालूम कर लिया। तदनन्तर सरल और स्वच्छ हृदयवाले श्रीदत्तने पूछा,—"प्रभो! मुझे कृपाकर यह बतलाइये, कि अपनी माता और पुत्रीपर मेरा क्योंकर अनुराग हो गया?"

गुरुने कहा,—"इसके बारेमें जाननेके लिये तुम्हें पूर्व जन्मका वृत्तान्त मालूम होना चाहिये। उसे मन लगाकर सुनो—

---

# आठवाँ परिच्छेद।

पाञ्चाल-देशमें कम्पिलपुर नामका एक नगर था। उसमें अग्निशर्मा नामका एक ब्राह्मण रहता था। उसके चैत्र नामका एक पुत्र था। जब वह पुत्र बड़ा हुआ, तब ब्राह्मणने दो स्त्रियोंके साथ उसका ब्याह करा दिया। एक दिन चैत्र अपने मैत्र नामक एक मित्रके साथ किसी देशमें याचना करने गया। ब्राह्मणोंका तो रोज़गार ही भीख माँगना ठहरा। बहुत दिनोंतक घूम-फिर उन लोगोंने बहुतसा द्रव्य कमाया। एक दिन जब चैत्र नींदमें बेसुध होकर पड़ा हुआ था उस समय मैत्रके मनमें यह पाप-बुद्धि उत्पन्न हुई, कि इसे मारकर सभी द्रव्य मैंही ले लूँ। यही सोचकर वह अपने मित्रको मारनेके लिये उठ खड़ा हुआ। यह द्रव्य भी कैसी बुरी वस्तु है, जिसके लिये लोग अपने प्यारेसे प्यारे मित्रको भी मारनेके लिये तैयार हो जाते हैं। जैसे आँधी बादलोंको उड़ा ले जाती है, वैसे ही द्रव्यका लोभ मनुष्यके मनसे विवेक, सत्य, सन्तोष, लज्जा, प्रेम और दया आदि अच्छे गुणोंको दूर कर देता है।

"अस्तु; ज्यों ही वह अपने मित्रको मारनेके लिये तैयार हुआ, त्योंही उसके हृदयमें शुभ-कर्मोंका उदय हो आनेसे विवेकका सूर्य उदित हुआ। तुरतही उस लोभ-रूपी अन्धकारका नाश

हो गया। उसने अपने मनमें विचार किया,—"ओह! मुझे धिक्कार है, जो मैं अपने ऐसे विश्वासी मित्रको मारनेके लिये तैयार हो गया। ओह! मैं बड़ा ही नीच हूं।" यही सोचकर उसने अपने मित्रको मारनेके लिये उठाया हुआ हाथ नीचे कर लिया।

"जैसे खुजलानेसे खुजली बढ़ती जाती है, वैसेही ज्यों-ज्यों लाभ होता जाता है, त्यों-त्यों लोभ बढ़ता जाता है। इसी नियम के अनुसार वे लोग द्रव्योपार्जन करते हुए पुनः देशमें भ्रमण करने लगे। कभी-कभी लोभ एकही भवमें—एकही पलमें—घोर अनर्थ कर डालता है। एक दिन वे दोनों लोभी ब्राह्मण कृष्णा नदी में पैठे। एकाएक नदीमें बाढ़ आ जानेके कारण वे दोनों ही डूब गये। मरने बाद वे बहुतसी तिर्यंच-योनियों में भ्रमण करते फिरे। बहुत दिनों बाद उन्होंने मनुष्यका जीवन पाया और फिर दोनों मित्र ही हुए। चैत्रका जीव तो तुम हो और मैत्रका जीव वही शंखदत्त था। पूर्वजन्ममें उसने तुम्हारी हत्या करनेका विचार किया था, इसी लिये इस भवमें तुमने उसे समुद्रमें डाल दिया। जैसे सूद पर दिया हुआ रुपया फिर सूद समेत मिल जाता है, वैसेही एक भवमें मनुष्य जो-जो कर्म करता है, उनका फल दूसरे जन्ममें सूद-समेत मिल जाता है।

"अस्तु; जब तुम नदीमें डूब गये, तब तुम्हारी दोनों स्त्रियाँ-गंगा और गौरी—तुम्हारे वियोगसे बड़ीही दुःखित हुई। उन्होंने सारा भोग-विलास छोड़, वैराग्य धारण कर लिया और महीने-भरका उपवास करनेवाली तापसी हो गयीं। वास्तवमें विधवा

हो जानेपर कुल-नारियोंको धर्म करनाही उचित है; क्योंकि पूर्व जन्ममें न जाने कौनसा पाप किया, जिससे इस जन्ममें विधवा होना पड़ा; फिर दूसरा जन्म क्यों बिगाड़ना? एक दिन दोपहरके समय गौरीको बड़ी प्यास लगी। उसने व्याकुल हो कर अपनी दासीको बार-बार पुकारा; पर वह नींदमें अलसायी हुई पडी थी, इस लिये एकबार ज़रासी आँखें खोलकर भी फिर सो रही। यद्यपि उसको क्रोध कम आता था, तथापि इस बातसे उसे बेहद गुस्सा चढ़ आया; क्योंकि पुराने लोगोंका कहा हुआ है, कि दुर्बल, तपस्वी, रोगी, क्षुधातुर और प्याससे व्याकुल मनुष्योंको झट क्रोध चढ़ आता है। गौरीने झुँझलाकर कहा,— "अरी राँड़! क्या तुझे साँप-काटेसे मौत आ गयी; जो एकबारगी चुप्पी साधे हुई है? मुँहसे बोली हाँ नही निकलती क्यों?' जब उसने इस प्रकार झूँझलाकर कहा, तब उस दासीकी नींद खुल गयी और वह घबराई हुई जल लेकर आयी तथा मीठी-मीठी बातें कहकर मालिकिनको प्रसन्न करने लगी। परन्तु कटू-वाक्य कहनेके कारण गौरीने दुस्सह दुष्कर्म अर्जन किया। जब हँसी दिल्लगीमें कहे हुए दुर्वाक्य से भी दोष लगता है, तब क्रोधसे कही हुई बातसे क्यों न दोष लगेगा?

"एक दिन गङ्गाने भी ऐसा ही किया। उस दिन उसके बुलानेपरभी दासी ज़रा देरसे आयी, इस लिये वह गरजकर बोली;—'अरी दुष्टा! क्या तुझे किसीने क़ैद कर रखा था, जो अब तक नहीं आती थी?' इसी तरह गङ्गाने भी दुष्कर्म अर्जन

किया। इस क्रोधको धिक्कार है, जिससे मनुष्यको इस प्रकार दोष लग जाता है। यह क्रोध सब जप-तप और सत्कर्मोंका नाश कर देता है।

"कुछ दिन बाद एक वेश्याको बहुतसे कामी पुरुषोंके साथ भोग-विलास करते देखकर गङ्गाने अपने मनमें विचार किया,—'यह धन्य है, जो इस प्रकार जूहीकी तरह खिली हुई बहुतसे रसिया भौरोंका जी खुश करती है। मैं बड़ीही अभागिनी हूँ; क्योंकि मेरे स्वामी भी मुझे छोड़कर चले गये।' इस प्रकार बुरे विचार मनमें आनेसे उसकी आत्मामें दुष्कर्मका कीचड़ लग गया। सच है, मूर्खता लोहेसे भी बढ़कर दुर्भेद्य होती है।

"क्रमशः वे दोनों स्त्रियाँ मरकर ज्योतिर्लोकमें जाकर, देवी हुईं। वहाँसे च्युत होनेपर वे तुम्हारी माँ और पुत्री होकर उत्पन्न हुईं। उस भवमें साँप काटनेसे मर जानेकी बात दासीसे कहनेके कारणही तुम्हारी पुत्रीको इस भवमें साँपने काट खाया और क़ैदकी बात कहनेके कारण तुम्हारी माता भीलोंके द्वारा क़ैद की गयी। पूर्व जन्ममें तुम्हारी माताको वेश्याका वैभव देखकर लालच हुआ था, इसीसे वह इस जन्ममें वेश्या हुई। पूर्व जन्ममें किये हुए कर्मोंके प्रभावसे अनहोनी बातभी हो जाती है। मन और वचनसे किये हुए कर्मका फल शरीरसे भोगना पड़ता है। पूर्व जन्ममें ये दोनों तुम्हारी स्त्रीही थीं, इसी लिये इनके साथ सम्भोग करनेकी तुम्हें इच्छा हुई; क्योंकि पूर्व जन्मके अभ्यासके ही कारण अगले जन्ममें वैसा संस्कार होता है पूर्व जन्ममें

जो प्रबल संस्कार होते हैं, वे दूसरे जन्ममेंभी बने रहते हैं ; पर निर्बल संस्कार नष्ट हो जाते हैं ।”

इस प्रकार पूर्व जन्मकी कथा सुनकर श्रीदत्तको बड़ा खेद हुआ। उसने कहा,—“गुरुवर ! अब आप मुझे इस संसारसे उद्धार पानेका उपाय बतलाइये । जिस संसारमें मनुष्यको ऐसी-ऐसी विडम्बनाएँ सहनी पड़ती हैं, उस श्मशानके समान संसार से कौन बुद्धिमान् नेह-नाता लगायेगा ?”

यह सुन, गुरुने कहा,—“मनुष्य चारित्र ग्रहण करके इस भव-सागरके पार उतर सकता है। इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है।”

श्रीदत्तने कहा,—“आपने जो कुछ कहा, वह बिलकुल ठीक है; पर मैं अपनी इस पुत्रीको किसे दूँ ? बेटीका बोझ तो बड़ा भारी होता है। इसकी ओरसे निश्चिन्त हुए बिना मैं कैसे भवसागर के पार जा सकता हूँ?”

गुरुने कहा,—“यह चिन्ता व्यर्थ है । तुम्हारा मित्र शंखदत्तही इसके साथ व्याह करेगा।”

अपने मित्रका नामही सुनते श्रीदत्त मारे दुःखके पानी-पानी हो गया और गद्गद-कण्ठसे बोला,—“हे दीन-बन्धो ! मुझ जैसा पापी और निर्दय मित्र दुनियामें दूसरा न होगा। मैंने तो उसे समुद्रमें गिराकर मार डाला।”

गुरुने कहा,—“तुम व्यर्थ न घबराओ। तुम्हारा मित्र अभी आयाही चाहता है।”

गुरुके ऐसे वचन सुन, वह चकित भावसे चारों ओर देखने लगा, इसी समय उसे दूरसे आता हुआ उसका मित्र दिखाई दिया। उसे आतेदेख, श्रीदत्तने शर्मसे सिर झुका लिया। इधर शंख-दत्तको श्रीदत्तपर दृष्टि पड़तेही बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ और वह उसे मारने दौड़ा; किन्तु राजा आदि को देखकर सहम गया और चुपचाप खड़ा हो गया। यह देख, गुरुदेवने कहा,—"शंखदत्त! क्रोध मत करो। क्रोधकी अग्नि अपने आपको ही जला देती है। क्रोधकी उपमा पण्डितोंने चाण्डालसे दी है। इस चाण्डाल का कभी स्पर्श भी नहीं करना चाहिये। इस चाण्डालको छूनेसे लाख गंगा नहानेपर भी आदमी शुद्ध नहीं होता।"

गुरुके मुखसे निकली हुई यह तत्त्व-वाणी सुनकर शंखदत्त वैसेही शान्त हो गया, जैसे मन्त्र पढ़नेपर साँप शान्त हो जाता है। इसके बाद श्रीदत्तने उसका हाथ पकड़कर उसे अपने पास बैठाया। इसके बाद उसने गुरुसे पूछा,—"महाराज! मेरा यह मित्र किस तरह समुद्रसे निकल आया, सो कृपाकर बतलाइये।

मुनिवरने कहा,-समुद्रमें गिरतेही इसे एक तख़्ता हाथ लग गया। सच है, जिसकी आयु पूरी नहीं होती, वह मौतके मुँह पड़ कर भी बच जाता है। इसके बाद अनुकूल पवनके सहारे बहता हुआ यह सातवें दिन समुद्रके किनारे बसे हुए सारस्वत नामक नगरमें आ पहुँचा। यहींपर इसका संवर नामका एक मामा रहता है। वही इसे पहचानकर अपने घर ले गया। इस तरह सात दिनों तक बिना खाये-पिये लगातार केवल समुद्रका पानी पीनेसे

इसका शरीर बहुतही खराब हो गया था। महीनों दवा-दारू होने पर यह अच्छा हुआ। जब इसकी तबियत अच्छी हुई, तब इसने मामासे सुवर्णकुलका पता पूछा। इसके उत्तरमें मामाने कहा,—"वहाँसे वह नगर बीस योजनकी दूरी पर है। मेरे सुननेमें आया है, कि वहाँ आजकल कोई बहुत बड़ा सौदागरी जहाज़ आया हुआ है। यह बात सुनतेही इसको पूरा विश्वास हो गया, कि वह जहाज श्रीदत्तकाही होगा। यही सोचकर यह अपने मामासे छुट्टी लेकर इस नगरमें आया और तुम्हारा पता पूछता हुआ यहाँ तक चला आया है। संयोग और वियोग कर्मानुसार होते ही रहते हैं। मिला हुआ बिछुड़ जाता और बिछुड़ा हुआ मिल जाता है।"

यह कह, गुरु महाराजने शंखदत्तसे भी पूर्व्व जन्मका वृत्तान्त कह सुनाया। सब सुनाकर वे बोले,—"देखो, तुमने उस जन्म में इसे मारना चाहा था, इसी लिये इस जन्ममें इसने तुम्हें मारनेकी चेष्टा की, यह तो अदलेका बदला हुआ। इस लिये अब आजसे तुम दोनों आपसमें प्रीति रखो; क्योंकि मनुष्यको सब जीवोंसे सदा मैत्री-भाव रखना चाहिये; क्योंकि इससे इस लोक और परलोक—दोनोंमें कल्याण और सिद्धि प्राप्त होती है।

गुरुके इस उपदेश को सुनकर, परस्पर एकने दूसरेका अपराध क्षमा कर दिया और आपसमें बड़े प्रेमसे रहने लगे। जैसे पहली बरसातका पानी बड़ा ही फल देनेवाला होता है, वैसे ही गुरुका वचन भी बड़ा हितकारी होता है।

इसके अनन्तर गुरु महाराज इसप्रकार धर्म-देशना देने लगे:—

"हे प्राणियो! तुम सदा धर्म का आचरण करनेकी ही चेष्टा करते रहो; क्योंकि सर्व श्रेष्ठ अर्थों की सिद्धि और समकित तथा देश-विरति आदि गुण धर्मकेही वशमें हैं। अन्यान्य धर्म और उत्तम कर्म अच्छा फल देते हैं सही; पर यह जैन-धर्म तो सदा, सब प्रकार, सबसे श्रेष्ठ, कल्पवृक्षके समान है।"

यह देशना श्रवणकर, राजा इत्यादि जितने मोक्षार्थी वहाँ बैठे थे, उन सब लोगोंने सम्यक्त-पूर्वक देश-विरति-श्रावकधर्म अङ्गीकार कर लिया। वह प्रेत और सुवर्ण रेखा भी समकित लाभ करनेमें समर्थ हुए और पूर्व भवके प्रेमके कारण उनके दिव्य और औदारिक शरीरका संयोग बहुत दिनों तक बना रहा।

इसके बाद राजाके परम प्रेम-पात्र श्रीदत्तने अपनी कन्या और आधी सम्पत्ति शंखदत्तको दे डाली। बाकीका आधा द्रव्य उसने निर्मल बुद्धिके साथ अच्छे कामोंमें व्यय किया और अन्त में ज्ञानी गुरुके पास जाकर चारित्र ग्रहण कर लिया। फिर तो वह नाना स्थानोंमें विहार करता हुआ, मोहराजाको पराजित कर, चारों घाती कर्मों का विनाशकर, यहाँ आ पहुँचा और यहीं उसे केवलज्ञान प्राप्त हुआ। हे महाराज मृगध्वज! मैं ही वह श्रीदत्तमुनि हूँ। जिसकी कथा मैंने अभी हालही आपको सुनायी है। हे शुकराज! जैसा कि मैंने तुम्हें अभी सुनाया है, मेरी स्त्रियाँ भी दूसरे जन्ममें मेरी माँ और पुत्री हुईं। इस लिये इसमें कोई आश्चर्य या खेद करनेका काम नहीं है; क्यों कि यह तो संसारका नियम ही है।"

# नवाँ परिच्छेद ।

श्रीदत्तकेवली के मुँहसे यह सब कथाएँ और उपदेश श्रवणकर शुकराजको ज्ञान होगया और वह अपने माँ-बापको 'माता-पिता' कहकर पुकारने लगा। यह देखकर राजा और रानीको बड़ी प्रसन्नता हुई। इसके बाद राजाने कहा,—"स्वामिन्! आपको इस तरह यौवनमेंही वैराग्य उत्पन्न हो गया, इस लिये आप धन्य हैं। अब कृपाकर यह बतलाइये, कि मुझे क्योंकर वैराग्य प्राप्त होगा?"

मुनियोंमें चन्द्रमाके समान शोभायमान उन केवली महाराजने कहा,—"जब तुम्हारी रानी चन्द्रावतीका पुत्र तुम्हारी आँखों तले पढ़ेगा, तभी तुम्हें वैराग्य प्राप्त होगा।"

यह सुन, ज्ञानी मुनिकी कही हुई बातको सच मान, राजा उन्हें प्रणाम कर चलते बने। भगवान् केवली भी वहाँसे अन्यत्र बिहार कर गये।

इस प्रकार जब वह शुकराज दश वर्षका हुआ, तब रानी कमलमालाके एक दूसरा पुत्र पैदा हुआ। राजने उसी स्वप्नको स्मरणकर उसका नाम 'हंसराज' रखा। क्रमशः यह राजकुमार

भी उंजियाले पाखके चन्द्रमाकी तरह बढ़ने लगा। क्रमशः यह लड़का पाँच वर्षका हुआ और जैसे रामके पीछे-पीछे लक्ष्मण डोलते फिरते थे, वैसेही यह भी शुकराजके पीछे-पीछे डोलने लगा। एक दिन राजा अपने दोनों पुत्रोंके साथ दरबारमें बैठे हुए थे। उसी समय ड्योढ़ीदारने आकर खबर दी,—"महाराज! अपने शिष्योंके साथ गाङ्गिल ऋषि द्वार पर आये हैं।" यह सुन, राजाको बड़ा विस्मय हुआ और उन्होंने ऋषिको शीघ्र बुला-लानेकी आज्ञा दी। उनके आने पर राजाने उन्हें बड़े आदरसे सुन्दर आसन पर बैठाते हुए प्रणाम किया। मुनिने भी दिल खोलकर कल्याणकारी आशीर्वाद दिया। इसके बाद राजाने उनसे तीर्थ और आश्रमका समाचार पूछनेके बाद यहाँ आनेका कारण पूछा। उस समय कमळमाळाको बुलवाकर, ऋषि कहने लगे,—"राजन्! आज रातको स्वप्नमें गोमुख यक्षने मुझसे कहा, कि मैं तो अब विमलगिरि नामक मूल तीर्थको जाता हूँ। इस पर मैंने पूछा, कि तब इस तीर्थकी रक्षा कौन करेगा? उसने कहा, कि दूजे भीम और अर्जुनके समान, शुक-राज और हंसराज नामके जो दो नाती तुम्हारे पैदा हुए हैं, वे बड़े ही लोकोत्तर चरित्रवाले हैं। इन्हींमेंसे किसी एकको यहाँ ले आओ। बस उसीके प्रतापसे यह तीर्थ उपद्रव-रहित हो जा-येगा। महान् पुरुषोंकी महिमा भी बहुत बड़ी होती है। मैंने कहा, कि क्षितिप्रतिष्ठित नगर यहाँसे बड़ी दूर है, इसलिये मैं उसे बुलानेके लिये वहाँ कैसे जाऊं? यह सुनते ही उस यक्षने

कहा, कि इसकी फिक्र न कीजिये—मैं अभी आपको दोपहरके भीतर-ही-भीतर वहाँ पहुँचा देता हूँ। यह कह, वह यक्ष चला गया। सवेरे ही मेरी नींद खुली और मैं घबराया हुआ यहाँ चला आया। हे महाराज! उस तीर्थकी रक्षा के लिये आप अपना एक पुत्र मुझे दे दीजिये, जिससे मैं शीघ्र वहाँ पहुँच जाऊँ।"

यह सुनते ही बालक होनेपर भी बुद्धिमें परम चतुर हँसने झटपट कहा,—"पिताजी! उस तीर्थकी रक्षाके लिये आप मुझे ही जाने दीजिये।"

यह सुन, राजा और रानीने एकही साथ कहा,—"अहा! इस बोली पर हम सौ बार बलिहार जाते हैं।"

ऋषिने कहा,—"ठीक है। क्षत्रियोंके बालकोंमें भी बड़ी भारी तेजस्विता होती है। सत्पुरुष और सूर्यका तेज छिपाये नहीं छिपता।"

राजाने कहा,—"पर मैं इस बालकको कैसे त्यागदूँ? पुत्र कितनाही वीर हो, तोभी माँ-बाप कभी यह नहीं चाहते, कि उसे दूर कर दें; क्योंकि उन्हें रात-दिन यही चिन्ता लगी रहती है, कि कहीं पुत्रको कोइ कष्ट न हो। जिस स्थानमें भयकी कोई बात नहीं होती, वहाँ भी प्रेमी हृदय भयका भूत देखा करता है। सिंहका बालक सिंह ही होता है, तोभी सिंह या सिंहिनी उसके प्राणोंकी चिन्ता किया करते हैं।

यह सुन, शुकराजने कहा,—"बहुत दिनोंसे मैं उस तीर्थके

दर्शन करनेके लिये जाना चाहता हूँ। इसलिये यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैंही जाऊँ। यदि ऐसा हो, तो मुझे वैसाही आनन्द होगा, जैसा संगीतके प्रेमीको मृदंगकी ध्वनि सुनकर, भूखेको भोजन पाकर और नींदमें अलसाये हुएको कोमल सेज पाकर, होता है।"

अपने बड़े बेटेकी यह बात सुन, राजाने अपने मन्त्रीकी ओर देखा—मानों उनसे राय पूछी। राजाका मतलब ताड़कर मन्त्रीने कहा,—"महाराज! जहाँ माँगनेवाले स्वयं गाङ्गिल ऋषि, देनेवाले आप, रक्षाकी जानेवाली वस्तु तीर्थ-भूमि और रक्षाके लिये जानेवाले स्वयं राजकुमार शुकराज, वहाँ दूसरा कौन नहीं कर सकता है? यह बात तो बड़ीही उचित प्रतीत होती है। इसलिये आप प्रसन्न मनसे राजकुमारको जाने दें।

इसके बादही पिताकी आज्ञा पा, राजकुमार शुकराज, बड़े आनन्दके साथ, पिताके चरणोंकी वन्दना कर, ऋषिके साथ-साथ चल पड़े। थोड़ेही समय बाद राजकुमार उस तीर्थमें पहुँच गये। उनके आतेही उस आश्रमके फल-फूलोंकी वृद्धि हो गयी। हिंसक जन्तुओं और दावाग्नि आदिका भय जाता रहा। पूर्वमें किये हुए धर्माचरणोंका प्रभाव बहुत बड़ा होता है; इसीके प्रभावसे साधारण मनुष्यों की, स्थिति भी तीर्थङ्करके ही समान हो जाता है।

तपस्वियों के आश्रममें रहते हुए कुमार शुकराजने एक दिन रातके समय किसी स्त्रीका रोना सुना। सुनतेही उनका हृदय

पिघल गया। वे तुरत ही वहाँ जा पहुँचे। वहाँ आकर सुन्दरीको रोते देख, उन्होंने बड़े ही मधुर शब्दोंमें उससे रोनेका कारण पूछा। वह बोली,—"शत्रुओंकी पहुँचसे बाहर चम्पा नामक नगरीमें शत्रुमर्दन नामके एक राजा रहते हैं। मैं उन्हींकी पुत्री पद्मावतीकी धाई-माँ हूँ। आज मैं उसे बड़े आनन्दसे गोदमें लिये बैठी हुई थी, उसी समय जैसे कोई सिंह बछड़े समेत गौको उठा ले जाये, वैसेही एक दुष्ट विद्याधर हम दोनोंको उठा कर ले भागा। इसके बाद मुझे यहीं छोड़कर वह पापी विद्याधर पुत्रिको लिये हुए पंछी की तरह न जाने किधर उड़ गया। इसी दुःखके मारे मैं रो रही हूँ।"

यह सुन राजकुमारने उसे ढाँढ़स दे, एक झोपड़ीमें ले जाकर उसे बैठा दिया और आप उस विद्याधरकी खोजमें निकले। इसी तरह घूमते-फिरते हुए वे रातके पिछले पहर अपने डेरे पर आये। वहाँ ज़मीनपर लोट-लोटकर एक आदमीको रोते देख, उन्हें बड़ी दया हुई। उन्होंने पूछा,—"भाई! तुम कौन हो? तुम्हें किस बातका दुःख है?"

दयालु मनुष्योंसे अपने सुख-दुःखकी बात भली भाँति कह देनी चाहिये। यही सोचकर उसने कहा,—"मैं गगनवल्लभ पुरके विद्याधर-राजाका पुत्र हूँ। मेरा नाम वायुवेग है। मैं एक लड़कीको चुराये लिये जाता था। रास्तेमें यह तीर्थ पड़ गया। इस तीर्थ-भूमिकाको उल्लंघन करते ही मेरी विद्या नष्ट हो गई और मैं, उसी समय यहाँ गिर पड़ा। कन्या-हरण-रूपी

पापके योगसे मेरा शरीर बड़ी व्याधि पा रहा है। मैंने गिरतेही मारे तकलीफके उस लड़कीको और साथ-ही-साथ अपनी दुष्ट-बुद्धिको छोड़ दिया। फिर तो जैसे बाज़के हाथसे छूटकर चिड़िया भाग जाती है, वैसेही वह लड़की भाग गयी। लोभ और मोहमें पड़कर मैं ने तो अपना शरीरभी गँवाया।"

यह सुनतेही शुकराज बड़े प्रसन्न हुए; क्योंकि वे तो इसी विद्याधरको ढूँढ़ रहे थे। उसकी बातोंसे वे समझ गये, कि वह लड़कीभी आसही पास कहीं होगी। यही सोचकर वे चारों ओर उसे खोजने लगे। खोजते-खोजते वह एक जगह एक मन्दिरके भीतर बैठी हुई मिल गयी। यह देख, उसे मधुर वचनोंसे ढाँढ़स और विश्वास दे, राजकुमार शुकराज उसे धाई माँके पास ले गये। दोनों एक दूसरीको देखकर बड़ी प्रसन्न हुईं। उन्हें सुखी कर, राजकुमार उस विद्याधरके पास चले आये और दवा-दारू तथा सेवा-शुश्रूषा करके उसका रोग भी दूर करनेका उपाय करने लगे।

क्रमशः वह विद्याधर नीरोग होगया और शुकराजका बिना मोलका गुलाम हो गया। पुण्यकी महिमा बड़ी विचित्र होती है। एक दिन शुकराजने उस विद्याधरसे पूछा,—"तुम्हारी वह नभोगामिनी विद्या—जिसके सहारे तुम आसमानमें उड़ते थे—है, कि नहीं?" उसने कहा,—"विद्या तो है; परन्तु काम नहीं करती। अगर कोई सिद्ध विद्यावान् मनुष्य अपना हाथ मेरे सिरपर रखकर पुनः मुझे वह विद्या सिखला दे, तो फिर वह फलवती हो जायेगी।"

शुकराजने कहा,—"अच्छा, तो तुम वह विद्या मुझे सिखलादो। मैं उसे सिद्ध करके फिर तुम्हें सिखला दूँगा।"

यह सुन, उस विद्याधरने शुकराजको बड़ी प्रसन्नतासे वह विद्या बतला दी। श्री ऋषभदेव भगवानकी कृपा और उसकी अपनी आत्माकी निर्मलताके कारण थोड़ेही दिनोंमें वह विद्या उन्होंने सिद्ध करली। फिर तो उन्होंने प्रतिज्ञानुसार उस विद्याधरको वह विद्या सिखलायी, जिससे उसकी नष्ट हुई विद्या लौट आयी। इसके बाद उस विद्याधरने और भी बहुतसी विद्याएँ उसे सिखला दीं। बहुत पुण्यका सञ्चय होनेसे मनुष्यके लिये कोई वस्तु दुर्लभ नहीं होती।

इसके बाद, एक नये विमानकी रचनाकर, पद्मावती और उसकी धाईमाँको उसीपर बैठाकर शुकराजकुमार और विद्याधर चम्पापुरीकी ओर चले। उस कन्याके खो जानेसे उसके माता-पिता—दोनों राजा-रानी—बड़ेही दुखी थे। चारों ओर खुजवा-ढुँढ़वाकर वे हार मान चुके थे। सारा नगर उस राजकुमारीके शोकमें हाय-हाय कर रहा था।

इतनेमें एकाएक एक दिन वह विमान आ पहुँचा। राजा और रानी पुत्रीको देख, बड़ेही सुखी हुए। सारे नगरमें आनन्द छा गया। इसके बाद जब राजाने उन लोगोंसे सारी रामकहानी सुनानेके लिये कहा, तब उस विद्याधरने ब्योरेवार सब हाल कह सुनाया। सारा संवाद सुनकर राजा पहचान गये, कि यह राजकुमार तो मेरे मित्रका पुत्र है। यह जानकर वे

शुकराजको और भी प्यार करने लगे। कुछ दिन बाद राजा शत्रुमर्दनने अपनी लड़की शुकराजको व्याह दी। सच है, प्रीति इसी तरह धीरे-धीरे बढ़ती जाती है। बड़ी धूम धामसे विवाह हुआ। राजाने वरको बहुतेरा द्रव्य दान दिया। राजाके अनुरोधसे शुकराज अपनी नव-विवाहिता पत्नीके साथ आनन्द-विलास करते हुए कुछ दिन ससुरालमें ही रह गये।

जैसे सभी रसीली चीज़ें लवण पड़नेसे ही स्वादिष्ट लगते हैं; वैसेही इस लोकमें सभी काम पुण्य द्वारा ही अच्छे फल देनेवाले होते हैं। इसलिये सांसारिक कार्योंके करनेके साथ-ही-साथ मनुष्यको कुछ धर्मके कार्योंकी भी चिन्ता और आचरण करना चाहिये। यही सोचकर एक दिन शुकराज, राजाकी आज्ञा ले, उसी विद्याधरके साथ-साथ वैताढ्य-पर्वतपर चैत्य-वन्दन करने चले। वैताढ्य-पर्वतकी वह अनुपम शोभा देखते हुए वे दोनों क्रमशः गगनवल्लभ पुरमें आ पहुँचे। वहाँ पहुँच-कर उस विद्याधरने अपने माता-पितासे शुकराजके किये हुए उपकारकी बात बतलायी। यह सुनकर उसके माता-पिता बड़े ही प्रसन्न हुए और उन्होंने अपनी लड़की शुकराजको व्याह दी। बड़ी धूमधामसे व्याह हुआ। विद्याधरोंके राजाने उनसे कुछ दिन वहाँ रहनेको प्रार्थना की। तीर्थ-दर्शनमें चित्त लगा हुआ होने पर भी राजकुमार शुक उनके आग्रहसे कुछ दिन वहीं रह गये।

कुछ दिन बाद, एक दिन राजाकी आज्ञा ले, दोनों साले-बहनोई, एक विमानपर बैठकर तीर्थ-वन्दन करने चले। इसी

समय किसी स्त्रीने पीछेसे 'हे शुकराज ! हे शुकराज !' कह कर ज्योंही पुकारा, त्योंही उन्होंने विमान रोक दिया और उस स्त्रीके पास चले आये, । उन्होंने पूछा,—"तुम कौन हो ?" वह बोली,—"मैं चक्रेश्वरी नामकी देवी हूँ । जैसे अच्छे शिष्य गुरुकी आज्ञाके अनुसार कार्य करते हैं, वैसेही मैं भी गोमुख नामक यक्षके कहनेसे काश्मीरदेशके मध्यमें विराजमान विमलाचल-तीर्थकी रक्षा करनेके लिये चली जा रही थी, इसी समय मैं ज्योंही क्षितिप्रतिष्ठितपुरके पास पहुँची, त्योंही किसी स्त्रीको रोदन करते सुनकर उसके दुःखसे दुःखित हो गयी और आकाशसे नीचे उतर पड़ी। उसका जीवन व्यर्थही समझना चाहिये, जो पराये दुःखसे दुःखित नहीं होता। घरमें बैठी हुई उस लक्ष्मीके समान सुन्दरी स्त्रीको शोकसे व्याकुल होते देख, मैंने उसके पास जाकर पूछा,—'हे कमलनयने ! तुम कौन हो और क्यों रो रही हो ?' यह सुन, वह बोली,—'मेरे शुक नामक पुत्रको गाङ्गिलऋषि तीर्थकी रक्षाके लिये ले गये। तबसे मुझे उसका कोई समाचार नहीं मिला। इसीसे मैं रो रही हूँ।' मैंने कहा,—'तुम रोओ मत—मैं वहीं जा रही हूँ। वहाँसे लौट कर मैं तुम्हें तुम्हारे पुत्रका समाचार सुनाऊँगी।' उस बेचारीको इसी तरहका ढाँढ़स देकर मैं यहाँ चली आयी। तुम जब उस तीर्थमें नहीं मिले, तब अपने अवधिज्ञानसे मैंने यह मालूम कर लिया, कि तुम इस समय कहाँ हो ? अब हे शुकराज ! मेरा तुमसे यही कहना है, कि तुम शीघ्रही अपने माता-पिताके

पास लौट जाओ और अपने दर्शनामृतसे अपनी माताको सुखी करो। जैसे सेवक स्वामीका अनुसरण करते हैं, वैसेही सुपुत्र अपने माता-पिताका, सुशिष्य अपने गुरुका और कुलवधुएँ अपनेसे बड़ोंका अनुसरण करती हैं। माता-पिता अपने सुखके ही लिये पुत्र उत्पन्न करते हैं। फिर यदि पुत्रसे उन्हें दुःख ही हुआ, तो यही समझना होगा, कि जलसे आगही निकली। देखो, माता पितासे भी बढ़कर माननीय होती है। शास्त्रकारोंने माताको पितासे हज़ार गुनी बढ़ी चढ़ी बतलाया है। कहा भी है, कि—

'ऊढ़ो गर्भः प्रसवसमये सोढमत्युग्रशूलं,
पथ्याहारैः स्नपनविधिभिः स्तन्यपानप्रयत्नैः।
विष्टामूत्रप्रभृतिमलिनैर्कष्टमासाद्य सद्यः,
त्रातः पुत्रः कथमपि यया स्तूयतां सैव माता।'

*अर्थात्—'जिसने नौ महीनों तक गर्भमें रखा, प्रसवके समय बहुत बड़ी वेदना सही, पथ्याहार-पूर्वक रहते हुए सदा बच्चोंको पुष्ट दूध पिलाया, पाखाना-पेशाब आदि साफ़ करने का कष्ट उठाती रही,—इन सब कष्टोंको सहते हुए भी जिस माता-ने पुत्रकी रक्षा की, वह धन्य है।'*

उसकी बात सुनतेही शुकराजकी आँखोंमें जल भर आया। उसने कहा,—"हे देवि! तीर्थके इतने पास आकर बिना वहाँ दर्शन-नमस्कार किये मैं क्योंकर पीछे लौट जाऊँ? जैसे लाख ज़रूरी काम होते हुए भी कोई अच्छे-अच्छे अन्न-व्यञ्जनसे भरी हुई थाली छोड़कर कहीं नहीं जाता, वैसेही बुद्धिमान् मनुष्य हज़ार जल्दीका काम सामने होनेपर भी धर्मका काम छोड़कर

कहीं नहीं जाते। माता-पिता तो इसी जन्ममें सहायता करनेवाले हैं; पर धर्म तो इस लोक और परलोक—दोनोंमें सहायता करता है। इस लिये मैं भली भाँति तीर्थका दर्शन कर शीघ्रही घर लौटनेकी चेष्टा करूँगा। यह बात आप मेरी मातासे जाकर कह देंगी।”

इस प्रकार उसका उत्तर सुनकर वह देवी पीछे फिरी और उनके कहे अनुसार उनकी माताको संवाद दे आयी।

इधर शुकराज भी उसी समय तीर्थमें आ पहुँचे। वहाँ विस्मयमें डालनेवाली सिद्ध महाराजकी शाश्वती-प्रतिमाका दर्शन कर उसे प्रणाम करते हुए उन्होंने अपना जीवन सफल किया। इसके बाद बड़ी शीघ्रतासे वहाँसे लौटकर वे, अपनी दोनों स्त्रियोंको साथ ले, दोनो ससुरों और नाना गाङ्गिलऋषिसे विदा माँग, श्रीऋषभदेव स्वामीको प्रणामकर, बड़े आडम्बरके साथ विमानमें बैठ, चारों ओर विद्याधरोंसे घिरे हुए, अपने नगरके पास आये।

पुत्रके आनेका समाचार सुनकर पिताको बड़ा ही आनन्द हुआ। उन्होंने बड़ी धूम-धामसे अपने पुत्र और पुत्रवधुओंको नगरमें पधराया। चारों ओर नागरिकगण हर्षके मारे जय-जयकार करने लगे। घर-घर तोरण और वन्दनवारें दिखाई देने लगीं, हर मकानमें नाच-गान होने लगा। उस दिन सारे नगरमें खूब धूम-धाम, चहल-पहल और उत्सव-आनन्द मचा रहा। जैसे वर्षाकालका मेघ हर जगह पानी बरसाता है, वैसेही महान् पुरुषोंका हर्ष घर-घर छा जाता है।

# दसवाँ परिच्छेद

अब शुकराज सयाने हो चुके हैं। भविष्यतमें उन्हीं को गद्दी मिलनेवाली है। इसलिये राजा अभीसे उन्हें राजकाजके काम सिखला रहे हैं। इन दिनों वे बराबर राजदरबारमें आते और अपने पिताको राजकाजमें पूरी-पूरी सहायता देते हैं। वास्तवमें पुत्रका कर्त्तव्यही पिता की सहायता करना है। बड़े सुखसे दिन बीतने लगे।

इसी तरह एक बार वसन्तऋतु का समय आया। यह ऋतु विलासियोंके लिये बड़ी ही आनन्ददायक होती है। राजा एक दिन अपने दोनों पुत्रों और समस्त परिवारके साथ बागकी सैर करनेके लिये गये। वहाँ सब लोग लाज-सङ्कोच छोड़कर अलग अलग मनमानी मौजें कर रहे थे। इतनेमें बड़े ज़ोरका कोलाहल होने लगा। राजाने अपने एक सिपाही को इस शोर-गुलका कारण जाननेके लिये भेजा। उसने सब हाल दर्याफ्त करके लौट आकर कहा,—"महाराज! सारङ्गपुर नामक नगर के राजा वीराङ्गका पुत्र शूर किसी पुराने वैरका बदला भँजानेके

इरादेसे आपके पुत्र हंसके साथ लड़नेके लिये चला आ रहा है। यह सुन, राजा सोचने लगे,—"अजब तमाशा है। राज्य मैं कर रहा हूँ, राज्यकी सम्हाल शुकराज कर रहा है; वीराङ्ग मेरे अधीन है, फिर शूर और हंसमें वैर क्योंकर हुआ?" ऐसा विचार कर राजा शुकराज और हंसराजको साथ लिये हुए आगे बढ़े। इतनेमें एक और सिपाहीने आकर कहा,—"महाराज! पूर्व जन्ममें हंसके जीवने शूरके जीवको बहुत दुःख दिया था, इसीलिये शूर हंससे लड़नेके लिये चला आरहा है।" यह सुनते ही वीर पुरुषोंमें शिरोमणि राजकुमार हंसने अपने पिता और भाईको आगे बढ़नेसे रोक दिया और आपही अकेले उससे लड़नेके लिये तैयार हुए। शूर भी तरह-तरहके हथियार लिये हुए युद्धके रथपर सवार हो, युद्ध-भूमिमें आ पहुँचा।

देखते-देखते दोनों वीर कर्ण और अर्जुनकी भाँति एक दूसरे पर हथियार चलाने लगे। बड़ी देरतक युद्ध होता रहा। तोभी उन दोनोंकी युद्ध करनेकी इच्छा पूरी नहीं होती थी। दोनों ही एक समान शूर, वीर, धीर और पराक्रमी थे। यह देख, विजय-लक्ष्मी भी बड़े संशयमें पड़ गयी, कि किसके गलेमें जयमाल डालूँ। बड़ी देरकी लड़ाईके बाद हंसने ठीक उसी तरह शूरके सब हथियार काट डाले, जैसे इन्द्रने सब पर्वतोंके पर काट लिये थे। कुल हथियार कट जानेपर शूरका क्रोध और भी बढ़ा और वह वज्रके समान घूँसा ताने हंसको मारने दौड़ा। यह देख, राजा मृगध्वज बड़ी शङ्कामें पड़कर शुकराजकी ओर देखने लगे।

पिताका मतलब समझकर शुकराजने अपनी विद्या हंसके शरीर में प्रविष्ट कर दी। उस विद्याके प्रभावसे हंसने उसी समय शूरको तिनकेकी तरह उठाकर फैंक दिया। वह गिरतेही मूर्च्छित हो गया। बड़ी देरतक उसके सेवकोंने उसके चेहरे-पर पानीके छींटे दिये, तब कहीं जाकर उसे होश हुआ। परन्तु क्रोध करनेका कोई फल नहीं निकला—उलटे दुखही हुआ, यह देखकर वह अपने मनमें विचार करने लगा,—"मुझे धिक्कार है। मैंने क्रोध करके व्यर्थही इस जन्ममें भी अपमान सहा और अगले जन्ममें भी रौद्र-ध्यानसे बँधे हुए पाप-कर्मके कारण अनन्त दुःख भोग करूँगा।" ऐसा विचार कर वह राजा मृगध्वज और उनके दोनों पुत्रोंके पास आकर माफ़ी माँगने लगा। यह देख, अचम्भेमें पड़े हुए राजाने पूछा,—"तुमने अपने पूर्व-जन्मका हाल क्योंकर जाना?"

वह कहने लगा,—"महाराज! एक दिन श्रीदत्त केवली मेरे नगरमें आये हुए थे। उनसे मैंने अपने पूर्व जन्मका हाल पूछा,तो उन्होंने कहा,—

'पूर्व समयमें भद्दिलपुर नामक नगरमें जितारि नामके राजा रहते थे, जिनके हंसी और सारसी नामकी दो रानियाँ थीं और सिंह नामका एक प्रधान मन्त्री था। बड़ा कठिन प्रण करके वे लोग तीर्थ-यात्रा करने चले और काश्मीरदेशमें गोमुख-यक्षके दिखलाये हुए विमलागिरि-तीर्थमें श्रीजिनेश्वरकी प्रतिमाको प्रणाम करनेके बाद वहीं एक सुन्दर नगर बसाकर परिवार-

सहित रहने लगे। क्रमसे राजा और रानीका स्वर्गवास हो गया। तब मन्त्री सिंह सब नगर-निवासियोंके साथ फिर भद्दिलपुरकी ओर चले। कहा भी है, कि जननी, जन्मभूमि, रातके पिछले पहर की निद्रा, प्रेमीका संयोग और मधुर भाषण-इन पाँच बातोंकी याद मनुष्य सहजही नहीं भूल सकता। जब वे आधी राह तैकर चुके, तब उन्हें किसी क़ीमती चीज़के कहीं गिर पड़नेका सन्देह हुआ। यह सन्देह होतेही उन्होंने चरक नामके अपने एक सेवकको बुलाकर कहा, कि पीछे कौनसी चीज़ गिर गयी है, यह तुम ज़रा देखते आओ और वह चीज़ मिल जाये, तो लेते आओ। उसने कहा,—'महाराज! इस सुनसान जङ्गली देशमें मैं अकेला कहाँ-कहाँ भटकता फिरूँगा? यह सुनतेही मन्त्रीने उसे बड़े ज़ोरसे डाँटा और उधरकी ओर रवानः किया। लाचार, बेचारा उस चीज़की तलाशमें पीछे लौटा; परन्तु उसे तो जङ्गलमें रहनेवाले भील उठा ले गये थे, इसलिये उसे नहीं मिलसकी। उसने तुरत लौट आकर सच्ची-सच्ची बात मन्त्रीसे कह सुनायी। मन्त्रीको उसके कहेका विश्वास नहीं हुआ और वे उसको चोर बताने और पीटने लगे। मारते-मारते उन्होंने उसे बेहोश कर दिया। वह बेचारा वहीं पड़ा रहा।

"क्रमशः लोग-बागको साथ लिये हुए मन्त्री भद्दिलपुरमें आ पहुँचे। इधर उन लोगोंके चले जानेपर चरककी बेहोशी दूर हुई। अपने सब साथियोंको चला गया देखकर वह बेचारा बहुत ही निराश हुआ। वह रह-रहकर प्रभुताके मदमें चूर प्रधानको

धिक्कार देने लगा। उसने सोचा,—"अधिकार का मद कैसा प्रवल होता है! अधिकार पाकर मनुष्य इतना घमण्डसे भर जाता है, कि हरदम मनमानी करनेको तैयार रहता है। फिर तो वह कोई काम सोच-समझकर—उसके परिणामका विचार कर नहीं करता। पराये दुःखोंपर तो उसकी निगाहही नहीं जाती। अपने आगे वह और सभी लोगों को तुच्छ ही सम-झता है।"

"यही सब सोचता-विचारता हुआ वह उसी जङ्गलमें घूमने लगा। एक तो रास्ता नहीं मालूम—दूसरे लगातार चलते रहने पर भी खाने-पीनेका कोई ठिकाना नहीं, इसलिये एक दिन आर्त्त-रौद्राध्यान करते-करते उसकी मृत्यु हो गयी। वह भद्दिल-पुरके पासही एक जगह साँप होकर रहा। एक दिन संयोग-वश भद्दिलपुरके मन्त्री वहीं पहुँच गये, बस उसने उन्हें तुरत काट खाया, जिससे उनकी तत्काल मृत्यु हो गयी। होते-होते वही सर्प मरकर अबके वीराङ्ग राजा का पुत्र शूर हुआ है और मन्त्रीश्वर पूर्वजन्मोंके कुछ पुण्योंके प्रतापसे विमलाचल-तीर्थके सरोवरका हंस हुआ। वहाँ तीर्थके मन्दिरको देखकर उस हंसको जाति-स्मरण हो आया और वह नित्य अपनी चोंचमें एक फूल लिये हुए जिनेश्वरके ऊपर जाकर चढ़ा आने लगा। साथही वह अपने दोनों पंखोंमें निर्मल जल भर कर जिनेश्वरका अभिषेक भी करने लगा। इस प्रकार बहुत दिनोंतक भक्ति-पूर्वक आराधना करनेके बाद मृत्युके अनन्तर वह सौधर्म-देवलोकमें जाकर देवता हो

गया। अब वहाँसे आकर वह पुण्य-योगसे राजा मृगध्वजका पुत्र हंस कहलाता है।' मुनि महाराजकी यह बात सुन, मुझे जातिस्मरण हो आया और मैं पूर्व जन्मका बदला लेनेके लिये हंस पर हमला करने आया। मेरे बापने मुझे कितना रोका; पर मैंने न माना और यहाँ आही पहुँचा। अब सबके देखते-देखते हँसने मुझे हरा डाला। इस प्रकार हार हो जानेपर विधि-वशात् मेरे क्रोधका विनाश हो गया है, और चित्तमें वैराग्यका उदय हो आया है, इसलिये मैं तो अब श्रीदत्त केवलीके पास जाकर दीक्षा ले लेता हूँ।"

यह कह, वह अज्ञानरूपी अन्धकारको दूर करनेमें सूर्य के समान तेजस्वी शूर अपने घर चला गया और शीघ्रही दीक्षा भी लेली। सच है, भले कामोंमें कभी देर नहीं करनी चाहिये। शुभ कार्योंमें शीघ्रताही प्रशंसनीय होती है।

जो काम अपनेको अच्छा लगता है, वही दूसरेको करते देख, मनुष्यकी उत्सुकता बढ़ जाती हैं। इसीलिये शूरको दीक्षा लेते देख, राजा मृगध्वजके मनमें छिपा हुआ वैराग्य मानों उछल पड़ा। वे सोचने लगे,—"अहा! अभीतक मेरे ऊपर वैराग्यका रंग, न जाने क्यों, नहीं चढ़ता? केवली महाराजने ज्ञान बलसे कहा था, कि जब तुम अपनी रानी चन्द्रावतीके पुत्रका मुँह देखोगे, तभी तुम्हें वैराग्य होगा। तो क्या यह वचन झूठा हो जायेगा? वह तो अभी तक बन्ध्याही बनी हुई है—उसकी गोद अभीतक सूनी है। ऐसी अवस्थामें अब मुझे क्या करना चाहिये?"

वे एक जगह बैठे हुए यही सब सोच रहे थे, कि इतनेमें एक नौजवान आदमीने वहाँ आकर उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने पूछा,—"भाई! तुम कौन हो?" वह राजाके इस प्रश्नका उत्तर देनाही चाहता था, कि इतनेमें बड़े ज़ोरसे आकाशवाणी हुई, कि "हे राजन्! आप निश्चयही इसे अपनी रानी चन्द्रावती काही पुत्र जानें, इसमें सन्देह न करें। यदि इसमें आपको कुछ सन्देह हो, तो यहाँसे पाँच योजन दूर दो पर्वतोंके बीचमें जो कदली-वन है, उसीमें ज्ञानयोग धारण किये हुई पड़ी रहने वाली यशोमती नामकी योगिनीसे सारी बातें पूछ ले सकते हैं।"

यह आकाशवाणी सुनतेही राजा उस पुरुषके साथ-साथ झटपट ईशान-दिशाकी ओर चल पड़े। वहाँ पहुँचकर उन्होंने सचमुच कदली-वनमें योगिनीको बैठे देखा। राजाको देखतेही वह योगिनी बड़े प्रेमके साथ बोली,—"हे राजा! तुमने जो कुछ सुना है, वह सोलह आने सच है। इस संसार रूपी जंगल का सफ़र करना बड़ा ही कठिन कार्य है। परन्तु तुम्हारे जैसे तत्वज्ञानी भी इसके मोहमें पड़ जाते हैं, यही बड़े भारी आश्चर्य की बात है। इसके विषयमें मैं तुम्हें सब बातें शुरूसे सुनाती हूँ। ध्यान देकर सुनो।

"चन्द्रापुरी नामक नगरीमें चन्द्रमाके समान उज्ज्वल यश-वाले सोमचन्द्र नामक एक राजा थे। उनकी स्त्रीका नाम भानु-मती था। हेमवन्तक्षेत्रसे सौधर्म-देवलोकमें गयी हुई युगल आत्माएँ रानी भानुमतीके गर्भसे उत्पन्न हुईं। एक पुत्र और

एक कन्या हुई। पुत्रका नाम चन्द्रशेखर और कन्याका चन्द्रावती पड़ा। ज्यों-ज्यों दोनों की अवस्था बढ़ने लगी, त्यों-त्यों उनके शरीरका सौन्दर्य बढ़ता गया और दोनों एक दूसरेको देख-देखकर पूर्व जन्मकी बातें याद करते हुए समय बिताने लगे। क्रमशः दोनोंने जवानीमें पैर रखा। तब राजाने पुत्रकी शादी यशोमती नामक एक राजकुमारीके साथ और कन्याको शादी तुम्हारे साथ कर दी। परन्तु पूर्व जन्मके संस्कारके कारण दोनों का मन एक दूसरेसे ऐसा मिला हुआ था, कि दोनों परस्पर भोग-विलास करनेकी इच्छा मन-ही-मन कर रहे थे। सच है, यह पूर्व जन्मका सम्बन्ध भी बड़ा ही विकट होता है। जीवो को संसारकी विषय-वासनाकी ऐसी कुछ बुरी चाट लगी रहती है, कि उत्तम मनुष्य भी ऐसे नीन्दनीय कर्म करनेको तैयार हो जाते हैं।

"जब तुम उस शुकके पीछे-पीछे गाङ्गिल-ऋषिके आश्रममें चले गये, तब मौक़ा पाकर चन्द्रावतीने चन्द्रशेखरको बुलवाया। वह तुम्हारा राज्य हड़पकर जानेकी नियतसे बहुत बड़ी सेना लेकर आ पहुँचा। परन्तु तुम्हारे पुण्योंके प्रतापसे उसकी सारी चेष्टा विफल हुई। जब तुम लौटकर अपनी राजधानीमें आये, तब रानी और चन्द्रशेखरने मीठी-मीठी बातें बनाकर तुम्हें राज़ी कर लिया। इसके बाद चन्द्रशेखरने कामदेव नामक यक्षकी आराधना की। उसकी आराधनासे प्रसन्न हो एक दिन यक्षने प्रकट होकर पूछा'—'बोल, तेरी क्या इच्छा है?' उसने कहा,—'मुझे चन्द्रावतोसे मिला दो।'

"यह सुन, उस यक्षने उसे एक अञ्जन देकर कहा,—'लो, इसे आँखोंमें लगानेसे तुम अदृश्य हो जाया करोगे। फिर तो जब तक राजा मृगध्वज चन्द्रावतीके पुत्रको अपनी आँखों नहीं देखेंगे, तबतक तुम खूब मौजके साथ उसके साथ सुख-भोग करते रहोगे। पर हाँ, जिस दिन राजा उस पुत्रको देख लेंगे, उस दिन यह सारा भेद खुल जायेगा।' यह कह, वह यक्ष अन्तर्धान हो गया। चन्द्रशेखर खुशी-खुशी रानी चन्द्रावतीके महलमें गया। अञ्जन लगाकर अदृश्य बने हुए उसने एक मुद्दत तक वहाँ आनन्द से रानीके साथ भोग-विलास किया। काल पाकर चन्द्रावतीके गर्भसे चन्द्राङ्क नामका पुत्र पैदा हुआ। उस अञ्जनके प्रभावसे उस पुत्रकी पैदायशका हाल भी किसीने नहीं जाना। पुत्रके पैदा होतेही चन्द्रशेखर उसे लिये हुए अपनी स्त्रीके पास चला गया और उसीपर उसके पालन-पोषणका भार सौंप दिया। वह भी ठीक अपने पेटके बच्चेकी तरह उसका पालन-पोषण करने लगी। सच है, सती स्त्रियाँ अपने पतिके कर्म-धर्मकी ओर न देख केवल अपने कर्त्तव्यकी ओर देखती हैं। उनका काम पतिपर पूर्ण रूपसे प्रेम रखते हुए उनकी अज्ञाका पालन करना ही है। चाहे पति दूर रहे या निकट; पर उनका प्रेम निरन्तर एकसाँ बना रहता है। यद्यपि चन्द्रशेखर एक ज़मानेतक यशोमतीसे अलग रहा और आया, तो एक बच्चाही लिये आया, तोभी यशोमतीने, उससे कोई कैफियत नहीं पूछी और झट उस बालक का पालन-पोषण करना आरम्भ कर दिया। कुल-वधुओंकी यही रीति है।

"पर स्त्रीका मन बड़ा ही चञ्चल होता है। वह कभी एकसाँ नहीं बना रहता। कारण पाकर उसके विचारों और बुद्धिमें हेरफेर होही जाता है। यशोमतीका भी यही हाल हुआ। जब वह बालक बढ़ता-बढ़ता जवान हो गया, तब पति-वियोगसे पीड़ित यशोमतीके विचारोंने भी पलटा खाया। उसने सोचा-'जब मेरे स्वामी चन्द्रावतीकी चाहमें चूर होकर निरन्तर मुझे छोड़, उसीके पास पड़े रहते हैं, और मैं उनका मुँह भी नहीं देख पाती, तब मैं भी क्यों नहीं इस सुन्दर युवाके साथ मनमानी मौज उड़ाऊँ? ऐसा विचार कर, विवेक और विचारको ताक पर रख, उसने चन्द्राङ्क को अपने पास बुलाकर कहा,-'चन्द्राङ्क! यदि तू मेरे साथ रमण कर, तो यह सारा राज्य तेरा हो जायेगा।'

"उसके ऐसे वचन सुन, चन्द्राङ्क तो मानों आसमानसे ही गिरा। उसने चकित होकर कहा,—'माता! ऐसी अनुचित, अनहोनी और अनचीती तुम्हारे मुँहसे क्योंकर निकली?'

"वह बोली,—'हे सुन्दर! मैं तेरी माता नहीं हूँ। तेरी माता तो राजा मृगध्वजकी रानी चन्द्रावती है।'

"उसकी यह बात सुन, उसकी प्रार्थनाको पैरोंसे ठुकराकर वह असल हाल जाननेके लिये घरसे बाहर हो गया और आपकी खोजमें इधर-उधर भटकता हुआ आज आपके पास आही पहुँचा।

"उधर पति और पुत्र, दोनोंको खोकर यशोमतीको अपने

बुरे विचारपर बड़ी ग्लानि हुई और वह घर-द्वार छोड़ योगिनी बन गयी। वही यशोमती इस समय आपके सामने बैठी है। मैंने सच-सच सब हाल आपको सुना दिया। उसी यक्षने आकाश-वाणी द्वारा आपको मेरे पास आनेकी आज्ञा दी है।"

यह सारा वृत्तान्त श्रवण कर राजा मृगध्वजको क्रोधके साथ-ही-साथ बड़ा भारी खेद हुआ। सच है, घरके कुलक्षण देखकर किसके चित्तमें दुःख नहीं होता? राजाका यह हाल देख, वह योगिनी फिर कहने लगी,—"देखिये, इस संसारमें पुत्र मित्र, स्वजन, घर, धन आदि चीज़े बड़ी क्षण-भङ्गुर और बिना मोलकी हैं, तोभी अज्ञानी जीव इन्हें ही अपना समझकर इनपर ममता करता है। जो अपनी चेतन-शक्तिको जागृतकर, मिथ्यात्वके मार्गको छोड़ कर, योगदृष्टिसे विचार कर, शुद्ध मार्ग अङ्गीकार करता है, वही इस संसारके पार उतरता है। राजन्! यह संसार बड़ा ही गहन, चञ्चल और झूठा है, इसलिये इसके असल स्वरूपको जानकर काया, वचन और मनसे योगको स्थिर कर जैनधर्मका आचरण करना चाहिये। मोहमें मग्न होकर, क्रोधसे जल-भुनकर और लोभमें पड़कर मनुष्य नाना प्रकारके अज्ञान-पूर्ण कार्य करता रहता है और संसारमें भ्रमण करता हुआ अनन्त दुःख प्राप्त करता है। इसलिये आत्माका शुद्ध स्वभाव प्रकट करनेके लिये रागद्वेषका त्याग करना; ज्ञान, दर्शन और चारित्रका सञ्चय करना; क्रोध, मान, माया और लोभको जीतना; पञ्च महाव्रतका पालन करना और क्रोध, लोभ, मोह,

मद, मत्सर, और हर्ष रूपी छः भीतरी शत्रुओंको वशमें करना ही मनुष्यके लिये उचित है। इसीसे शुद्ध आटम-स्वभाव प्रकट होता है और मनुष्य सहजही संसारके पार पहुँच जाता है।"

योगिनीकी ऐसी वैराग्य-पूर्ण बातें सुन, राजाका चित्त बहुत कुछ शान्त हुआ और वे चन्द्राङ्कको साथ लिये हुए अपने नगरके बाग़ीचेमें आये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने चन्द्राङ्कको नगरमें भेज दिया और वहाँसे अपने पुत्र और प्रधान इत्यादिको बुलवा कर कहा,—"जैसे गुलाम बनकर आदमी घोर कष्ट पाता हैं, वैसेही इस संसारकी दासता करके मैंने भी बड़े दुःख उठाये। अब मैं जाकर दीक्षा ग्रहरण करता हूँ। अब मैं तुम्हारे नगरमें पैर न रखूँगा। इस लिये मेरे पीछेमें मेरा यह राज्य शुकराजको ही देना।"

मन्त्रियोंने कहा,—"महाराज! आप कृपा कर घर चलें। इसमें कौनसा दोष है? निर्मोही मनुष्यके लिये तो घर भी जङ्गल है और मोहित मनुष्यके लिये जङ्गल भी घर ही है। मोह ही मनुष्यके लिये बन्धन स्वरूप है। जिसने मोह छोड़ दिया, उसके घर चलनेमें क्या दोष है?"

उन लोगोंका यह आग्रह देख, राजा सबके साथ घर आये वहाँ चन्द्रशेखरने चन्द्राङ्कको राजाके साथ आते देख लिया। यक्षकी बात याद आ जानेके कारण वह उसी समय चुपचाप वहाँसे निकल भागा। इसके बाद राजा मृगध्वजने बड़ी धूम-धामसे शुकराजको राज्य देकर प्रव्रज्या अङ्गीकार कर ली। दीक्षा लेनेका विचार करतेही राजाके मुखड़ेपर एक विचित्र

प्रकारकी शोभा विराजने लगी। सच है, चन्द्रमाका उदय होने पर रात्रि प्रकाशमान होही जाती है। रातभर राजा इसी सोच में पड़े रहे, कि कब सवेरा हो और मैं दीक्षा ग्रहण करूँ? कब मैं निरतिचार सहित चारित्रका पालन करता हुआ विचरण करूँगा और कब मेरे सब कर्मोंका क्षय होगा? इसी तरहके विचारमें राजा एकवारगी लीन हो गये, रातभर इसी तरह शुद्ध भावना करते-करते प्रातःकाल होते-न-होते उनके कुल कर्मोंका क्षय हो गया और सूर्यके साथही साथ उनके केवल-ज्ञानका उदय हो आया। ऐहिक सुखके लिये किया हुआ कार्य कदाचित् विफल भी हो जाये; पर धर्मके स्वरूपका चिन्तन या उसके आचरणका सङ्कल्प-मात्र करनेसेही मनुष्यको इष्ट वस्तुकी प्राप्ती हो जाती है। इसी तरह राजा मृगध्वजको भी विना परिश्रमकेही केवलज्ञानकी प्राप्ति हो गयी। इस लिये प्रत्येक मनुष्यको चाहिये, कि शुभ ध्यानमें प्रवृत्त हो कर धर्मके स्वरूपका चिन्तन करनेकी चेष्टा करे।

समग्र भावको जाननेवाले मृगध्वज केवली को साधुका वेश अर्पण करनेके लिये देवताओंने वहाँ केवल ज्ञानका बड़ा भारी उत्सव किया। शुकराज और मन्त्री आदि यह समाचार पा, बड़े हर्षके साथ वहाँ आये। उस समय राजर्षि मृगध्वजने यह अमृत-समान देशना प्रदान की,—

"हे भव्य प्राणियो! यह संसार एक बड़ा भारी समुद्र है। इसके पार उतरनेके लिये साधुधर्म और श्राद्ध-धर्म—येही दोनों

पुलके समान हैं। इनमें साधुका मार्ग सीधा और श्रावकका टेढ़ा है। साधु-धर्म विषम है और श्राद्ध-धर्म सरल है। इन दोनों मार्गोंमेंसे जो मार्ग जिसे पसन्द हो, वह उसेही चुन ले। और उसी राहसे चलता हुआ किसी दिन इस संसार-समुद्रके पार उतर जाये।

यह देशना सुनकर कमलमाला, हंसराज और चन्द्राङ्कको भी बड़ा ज्ञान उपजा और तीनोंने ही दीक्षा ले ली। क्रमसे ठीक-ठिकानेसे शुद्ध चारित्रकी आराधना कर, इन सबने मोक्ष प्राप्ति की। पहलेसेही दृढ़ समकितवाले और साधु-धर्ममें श्रद्धा रखनेवाले शुकराजने यथाशक्ति श्रावक-धर्म स्वीकार किया। व्यभिचारिणी चन्द्रावतीका हाल राजर्षि मृगध्वज और कुमार चन्द्राङ्क, दोनों ही जानते थे ; पर उन्होंने वैराग्य-वुद्धिके कारण यह हाल किसी पर प्रकट नहीं किया। सच्चे वैरागीका यह काम नहीं है, कि दूसरोंका दोष दिखलाया करें। यह काम तो संसारकी मायामें फँसे हुए लोगोंका है। इन्हें ही परायी निन्दा और अपवादमें मज़ा मिलता है। परायी निन्दा और अपने मुँह अपनी प्रशंसा करना गुणहीनोंका काम है और परायी प्रशंसा तथा अपनी निन्दा करना सद्गुणी पुरुषोंका काम है। कहाभी है, कि

"बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न देखा कोय।
जो दिल खोला आपना, मुझसा बुरा न कोय॥"

इसके बाद अपनी चरण-रजसे पृथ्वीको पवित्र करनेवाले, इन्द्रके समान पराक्रमी और ज्ञान-रूपी सूर्यसे सुशोभित शुकराज:

भली भाँति प्रजा-पालन करने लगे। महादुष्टात्मा चन्द्रशेखर अवतक चन्द्रावतीसे मिलना जुलना नहीं छोड़ता था। जिसमें निष्कण्टक मौज करनेमें आये, इसके लिये वह शुकराजकी बुराई करनेकी फ़िक्रमें रहने लगा। उसने बड़ी-बड़ी मुश्किलोंसे तपस्या कर उस राज्यकी अधिष्ठात्री गोत्रदेवीको प्रसन्न कर लिया। कामान्ध मनुष्य क्या-क्या नहीं करता? देवीने प्रकट होकर कहा,—"बेटा! तूने किस लिये मेरी आराधना की? जो चाहे, वह माँग ले।"

चन्द्रशेखरने कहा,—"मुझे शुकराजका राज्य चाहिये।"

देवीने कहा,—"जिस प्रकार कोई सिंहके सामनेसे उसका आहार नहीं छीन सकता, वैसेही सम्यक्त्व-गुणसे सुशोभित शुकराजके राज्यको मैं उससे छीनकर तुम्हें नहीं दे सकती।"

चन्द्रशेखर'—"यदि तुम सचमुच देवी हो और मेरे ऊपर प्रसन्न हो, तो छलसे, बलसे, जैसे हो सके, वैसे मुझे वह राज्य दिलवा दो।"

यह सुन, उसकी भक्तिसे सन्तुष्ट देवीने कहा,—"यहाँ बलकी कोई कला काम नहीं आयेगी; छलसेही काम लेना होगा। जब शुकराज कहीं और चला जायेगा, तब मैं वहाँ जाऊँगी। मेरे प्रभावसे तुम्हारा रूप शुकके समान हो जायेगा। फिर तुम मौज के साथ राज्य करना।"

यह कह, वह देवी अदृश्य हो गयी। चन्द्रशेखरने बड़ी खुशीके साथ यह समाचार जाकर चन्द्रावतीको कह सुनाया।

# ग्यारहवाँ परिच्छेद

एक दिन शुकराजने यात्रा करने के विचारसे अपनी दोनों स्त्रियोंको अपने पास बुलाकर कहा,—मैं तीर्थ दर्शन करनेके इरादेसे उसी आश्रमकी ओर जाना चाहता हूँ।"

यह सुन उनकी स्त्रियोंने कहा,—"हम दोनों भी आपके साथ ही चलेंगी, क्योंकि एक तो हम आपके साथ रहेंगी, दूसरे, रास्तेमें माँ-बापसे भी मिलना हो जागा।"

लाचार, शुकराजने उनकी बात मान ली और उन्हें लिये हुए विमानपर बैठकर चलपड़ा उनसे भूल यही हुई, कि और किसीसे उन्होंने अपनी इस यात्रा की बात नहीं कही। इसी लिये और लोग इस बातसे बिलकुल ही अनजान रहे। चन्द्रावतीको यह बात मालूम हो गयी; क्योंकि वह इन दिनों शुकराजपर हर घड़ी निगाह रखती थी।

चन्द्रावतीसे ख़बर पाकर चन्द्रशेखर उसी समय उस नगरमें आ पहुँचा। देवीके कहे अनुसार वह ठीक शुकराजकी शकल-सूरतका हो गया। इस लिये सब लोग उसेही शुकराज समझने

लगे। रातके समय चन्द्रशेखर झूँठमूठ शोर मचाने लगा, कि दौड़ो—दौड़ो—कोई विद्याधर मेरी स्त्रियोंको लिये जा रहा है। यह शोर सुनकर सब लोग दौड़ पड़े और उसके पास आकर पूछने लगे,—"स्वामी! आपकी वे विद्याएँ क्या हो गयीं? उन्हीं से काम लीजिये न।"

यह सुन, चन्द्रशेखरने चटपट उत्तर दिया,—"मै क्या करूँ? उस दुष्ट विद्याधरने ठीक उसी तरह मेरी विद्याएँ हरलीं, जैसे यम मनुष्योंके प्राण हर लेता है।"

उन लोगोंने कहा,—"खैर, स्त्रियाँ और विद्याएँ गयीं, तो क्या हुआ? आपका शरीर तो बच गया। हम लोगोंको इसीकी खुशी है।"

इस प्रकार चन्द्रशेखरने सब लोगोंपर अपने कपटका जाल चलाकर सबको इस बातका विश्वास दिला दिया, कि वही शुकराज है। बस, फिर क्या था? वह मौजके साथ चन्द्रावती के संग भोग-विलास करने लगा।

इधर तीर्थका दर्शन कर, कुछ दिन अपनी ससुरालमें रहनेके बाद शुकराज अपने नगरको लौट आये और पहले उपवनमें ही ठहरे। चन्द्रशेखरने महलकी खिड़की परसे ही उन्हें देखकर शोर-गुल मचाना शुरू किया। इसके बाद मन्त्री आदिको बुला-कर बोला,—"जिस विद्याधरने मेरी स्त्रियोंको चुराया था, वही मेरा रूप धारण कर आया हुआ है। इस लिये तुम लोग उस के पास जाकर उसे मीठे-मीठे वचनोंसे समझा-बुझाकर पीछे लौट जानेको कहो; क्योंकि बुद्धिमान् को चाहिये, कि बलवान्को

अपनी मीठी-मीठी बातों से ही राज़ी कर ले। तुम लोग चतुर मन्त्री और सलाहकार हो। तुम्हारे लिये यह काम कुछ कठिन नहीं है।" यह सुन, मन्त्री आदि सभी लोग बाहर चले आये।

संघको अपने पास आया देख, शुकराज विमानसे नीचे आकर उसी आमके पेड़के नीचे बैठ गये। यह देख, मन्त्रीने उनके पास पहुँचकर कहा,—"हे विद्याधरोंके राजा! आपकी शक्ति और सामर्थ्य अपार है। आपने हमारे स्वामीकी स्त्रियों और विद्याओंका हरण कर लिया है—इसलिये हम आपका प्रभाव भली भाँति जानते हैं। अब आप कृपा कर अपने स्थानको लौट जाइये। हमारे स्वामीने बड़ी विनयके साथ आपसे यही निवेदन करनेके लिये हमें आपके पास भेजा है।"

यह सुनतेही शुकराज मन-ही-मन सोचने लगे,—"ये सब पागल तो नहीं हो गये हैं? इन ऊटपटाङ्ग बातोंका क्या मतलब?" इसी तरह नाना प्रकारके सङ्कल्प-विकल्प करते हुए शुकराजने कहा,—"मन्त्री! तुम क्या कह रहे हो? शुकराज—तुम्हारा राजा तो मैं ही हूँ।"

मन्त्री,—"हे विद्याधर! हमें आप क्यों ठग रहे हो। मृगध्वज राजाके पुत्र शुकराज तो अपने घरमें ही मौजूद हैं। आप तो उन्हींका रूप धारण करने वाले विद्याधर हैं। बहुत कहने-सुननेका क्या काम है? हमारे स्वामी शुकराज आपसे वैसेही डरे हुए हैं, जैसे बिल्लीको देखकर चूहा डरता है। इसलिये आप शीघ्रही यहाँसे सिधार जाइये।"

मन्त्री की यह बात सुन, शुकराजको बड़ा खेद हुआ। उन्होंने सोचा,—"अवश्यही किसी ठगने मेरा रूप बनाके राज्यपर दख़ल ज़माया है। राज्य, भोजन, शय्या, सुन्दर मकान, सुन्दर स्त्री और द्रव्य—ये सब बिना मालिकके नष्ट हो जाते हैं। आज नीतिकारोंकी यह बात बिलकुल सत्य हो गयी। अब यदि मैं इसे मारकर राज्य ग्रहण कर लूँगा, तो लोग यही कहेंगे, कि किसी धूर्त्त पापीने मृगध्वज राजाके पुत्र शुकराजको मार कर उनका राज्य छीन लिया।"

यही विचारकर शुकराज और उनकी रानियोंने मंत्री आदिको लाख समझाया; पर उनकी समझमें कुछ भी न आया। तब लाचार, शुकराज फिर विमानमें बैठकर उड़ चले। मन्त्री आदिने नक़ली शुकराजको यह समाचार कह सुनाया। यह सुन कर वह बड़ा प्रसन्न हुआ, कि सिरपर आयी हुई बला टल गयी।

आकाशमें जाते-जाते शुकराजकी रानियोंने उनसे लाख कहा; तोभी वे अपनी ससुरालमें जाकर रहनेको तैयार नहीं हुए; क्योंकि अपने पदसे भ्रष्ट होनेपर आदमी अपनी जान-पहचानके आदमियोंके पास नहीं जाना चाहता। ख़ासकर बिगड़ी हुई हालतमें ससुरालमें जाकर रहना, तो और भी बुरा है। वहाँ तो ख़ूब ठाट-बाटसे ही जाना चाहिये; क्योंकि कहा है, कि—

"सभायां व्यवहारेषु वैरिषु श्वशुरौकसि।
आडम्बराणि पूज्यन्ते, स्त्रीषु राजकुलेषु च॥"

*अर्थात्—सभामें, व्यवहारमें, वैरियोंके मध्यमें, ससुरालमें,*

*स्त्रियोंके बीचमें और राजदरबारमें आडम्बरसे ही इज्जत मिलती है।*

यही सोचकर वे कहीं नहीं गये। विद्या और शक्तिके साथ-साथ सारी भोगकी सामग्रियाँ रहते हुए भी राज्य-नाशकी चिन्ताके मारे बेचारेने छः महीने बड़े दुःखसे विताये। सच है, किसीके सब दिन बराबर नहीं जाते। आज जो पूरी तरह राज्य-लक्ष्मीका कृपा-पात्र बन रहा है। बड़े-बड़े राजा जिसकी सेवा करते हैं, कल उसेही सूनसान जँगलमें भटकना पड़ता है। मनुष्य अपने कर्मोंके अधीन है। कर्मके योगसे आदमी राजासे रङ्क और रङ्कसे राजा होता हैं। भोगकी वस्तु मिलते और नष्ट होते देर नहीं लगती। कभी तो आदमी हज़ारों आदमियोंसे तावेदारी करवाता है और कभी हज़ारोंकी तावेदारी बजाता है। कहा हुआ है; कि—

"कस्य वक्तव्यता नास्ति कोन जातो मरिष्यति?
केन न व्यसनं प्राप्तं कस्य सौख्यं निरन्तरम्?"

*अर्थात्—इस संसारमें किसमें दोष नहीं है? जन्म पाकर कौन नहीं मरता है? किसने दुःख नहीं उठाये? कौन सदा सुखी रहा है?*

इसका मतलब यह है, कि इस संसारमें कोई-न-कोई कहने-सुनने योग्य दोष प्रत्येक मनुष्यमें होता है, प्रत्येक मनुष्य जन्मता मरता रहता है, सबको कोई-न-कोई दुःख रहता ही है और कोई ऐसा नहीं है, जिसके दिन सदा सुखसे ही बीतते हों।

इसलिये सुख और दुःख तथा सम्पत्ति और विपत्तिको कर्माधीन समझकर हर्ष-विषादमें नहीं पड़ना चाहिये।

इसी तरह विमानमें बैठकर घूमते-फिरते हुए एक दिन उनका विमान नीचे गिर पड़ा। यह विपद्दपर विपद् आयी हुई देख, शुकराज इसका कारण ढूँढने लगे, तो उन्होंने देखा, कि सुवर्ण-कमलके ऊपर बैठे हुए, देवताओंसे सेवित मृगध्वज केवली बैठे हुए हैं। पिताके दर्शन कर, उन्होंने प्रसन्न मनसे उन्हें प्रणाम किया। साथही अपना दुःख याद कर उनकी आँखोंमें आँसू आ गया। सच है, दुःखकी अवस्थामें अपना आदमी देख कर रुलाई आही जाती है। केवलज्ञानीने अपने ज्ञान-बलसे उनका सारा हाल मालूम कर लिया। तोभी शुकराजने उनसे सब हाल कह सुनाया; क्योंकि मनुष्य अपने माँ बाप, प्रिय-मित्र, स्वामी और अपने आश्रित मनुष्योंसे अपने दुःखकी कहानी सुनाकर उसका बोझा हलका करता है।

गुरुने कहा,—"पहले जैसा कर्म कर आये हो, उसका फल तो भोगना ही पड़ेगा। फिर इसमें पछताने और खेद करनेसे तो कोई लाभ नहीं है?"

यह सुन. शुकराजने कहा,—"स्वामी! मैंने पूर्वमें कौन ऐसा बुरा काम किया, जिसका मुझे यह फल मिला?"

गुरुने कहा,—"जितारिके भवके पहले वाले भवमें तुम श्री-ग्राम नामक गाँवके अच्छे स्वभाव वाले और न्यायी ठाकुर थे। तुम्हारे एक छोटा भाई भी था, जो तुम्हारी सौतेली माँके पेटसे

# शुकराज कुमार

उन्होंने देखा, कि सुवर्ण-कमलके ऊपर बैठे हुए, देवताओं से सेवित मृगध्वज केवली बैठे हुए हैं। पिताके दर्शन कर, उन्होंने प्रसन्न मनसे उन्हें प्रणाम किया। ११

पैदा हुआ था। तुम्हारे पिताने उसे एक दूसरा गाँव दे रखा था। एक दिन तुम्हारा वह भाई तुम्हारे गाँवमें आया। जब वह लौटकर अपने गाँवको जाने लगा, तब तुमने उसे दिल्लगी-ही-दिल्लगीमें गिरफ्तार करवा लिया और कहा,—'बस तुम तो अब यहीं रहो। बड़े भाईके रहते हुए तुम्हें गाँव-नगरकी चिन्ता काहेकी ?' तुम्हारी यह बात सुन, तुम्हारे छोटे भाईने अपने मनमें सोचा,—'बस अब तो मेरा गाँव मेरे हाथसे निकल गया। यदि मैं यहाँ नहीं आता, तभी ठीक था। अब मैं क्या करूँ ?' वह ऐसा सोचही रहा था, कि तुमने थोड़ी देरमें उसे छोड़ दिया वह अपनी जानकी ख़ैर मनाता हुआ अपने गाँवको चला गया। उस समय तुमने दिल्लगीमें ही दारुण कर्म उपार्जन किया। इस लिये आज तुम्हें राज्य-नाशका यह दुःख भोगना पड़ रहा है। अहङ्कारमें पड़कर प्राणी तरह तरहके कर्मोंका उपार्जन करते हैं ; पर जब उसका कड़ुआ फल भोगना पड़ता है, तब जान निकलने लगती है ! परन्तु किये हुए कर्मोंका फल भोगे बिना छुटकारा भी तो नहीं हो सकता ?"

मुनियोंमें श्रेष्ठ मृगध्वजको चन्द्रशेखरकी सारी चालबाज़ी मालूम थी ; तो भी न तो शुकराजने इस बारेमें उनसे पूछा, न उन्होंने बतलाया ; क्योंकि बिना पूछे वे भला ऐसी बात क्यों कहते ? जगत् स्वभावसे उदासीन रहना ही केवल ज्ञानका फलहै।

अबके शुकराजने पिताके चरण पकड़कर कहा,—"पिताजी ! आपके रहते हुए मेरा राज्य चला जाये, यह तो ठीक नहीं है।

धन्वन्तरीका सा वैद्य पाकर भी रोग रह जाये, यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है। घरमें कल्पवृक्ष मौजूद रहते हुए दरिद्रता कैसे रह सकती है? सूर्योदय होनेपर भी अन्धकारका नामो-निशान थोड़े ही शेष रह जाता है! इसलिये हे स्वामी! आप कृपाकर ऐसा कोई उपाय बतलाइये, जिससे मेरा यह दुःख दूर हो और मेरा गया हुआ राज्य लौट आये।"

उनकी यह प्रार्थना सुन, केवलज्ञानी महाराजने कहा,—"हे शुकराज! धर्म करने से दुःसाध्य कार्य भी सुसाध्य हो जाता है। पासही विमलाचल-तीर्थ है। वहीं जा, तीर्थनायक प्रथम तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव स्वामीको नमस्कार कर, भक्ति-पूर्वक उनकी स्तुति करनेके अनन्तर छः महीनेतक उसी पर्वतकी गुफामें रहते हुए परमेष्ठि-महामन्त्रका जप करो। इससे तुम्हारे शत्रु तुम्हें देखते ही भाग खड़े होंगे, उनका किया हुआ कपट निष्फल हो जायेगा, और तुम्हें सब तरहसे सिद्धि प्राप्त होगी। जिस समय गुफाके भीतर खूब प्रकाश फैल जाये, उसी समय समझ लेना, कि तुम्हारा कार्य सिद्ध हो गया। बस, यह अजेय शत्रु को भी जीतनेका एक ही उपाय है।"

यह बात सुनकर शुकराज बड़े प्रसन्न हुए और विमान पर बैठकर विमलाचल-तीर्थमें चले आये और प्रथम तीर्थङ्कर देवकी वन्दना कर गुफ़ामें बैठे हुए पापहारी परमेष्ठिमन्त्रका जप करने लगे। इसी तरह छः महीने बीत जानेपर एक दिन उन्होंने चारों ओर एक बड़ा ही तीव्र प्रकाश फैलता देखा।

उसी समय शुकराजके भाग्योदयके साथ-साथ चन्द्रशेखरकी गोत्रदेवीकी महिमा भी घट गयी । उसने प्रकट होकर चन्द्रशेखरसे कहा,—"चन्द्रशेखर ! अब तू जल्द यहाँसे भाग जा । अब तेरा शुकराजवाला रूप नष्ट ही हुआ चाहता है ।" यह कह वह चली गयी और चन्द्रशेखर फिर अपने असल रूपमें आ गया । यह देख वह तुरतही जान लेकर चोरकी तरह भाग गया । शुकराज भी जप पूरा कर, अपने नगरमें आये । अबकी बार सबने इन्हें ही राजा मान लिया और इनका खूब आदर-सत्कार किया अब सब लोग जान गये कि यह कोई दुष्ट आदमी था, जो इस तरह कपटका जाल फैलाये हुए था । परन्तु उसकी और कोई गुप्त बात किसीने नहीं जानी ।

अबकी बार विमलाचल-तीर्थकी प्रकट महिमा देखकर, शुकराज दिव्य और अतुल ज्योतिवाला विमान बना, सामन्त्री, सम्बन्धी, और विद्याधर आदि सभी मित्रादिको साथ लिये हुए शुकराज बड़ी धूमधामके साथ विमलाचल-तीर्थकी ओर चले । चन्द्रशेखर भी इस दलमें शामिल था ; क्योंकि उसकी बद चलनीकी बात और किसीको तो मालूम ही नहीं थी । वहाँ पहुँच, भगवान्‌की बड़ी धूमधामके साथ पूजा की । इसके बाद शुकराजने सबके सामने ही कहा,—"इस तीर्थमें आकर परमेष्ठि मन्त्रका जाप करनेसेही मैंने अपने शत्रु पर विजय पायी, इस लिये अबसे पण्डितोंको इसका नाम शत्रुञ्जय-तीर्थ रख देना चाहिये ।

इस प्रकार उसी दिनसे उन्होंने इस तीर्थका "शत्रुंजय" ऐसा

सार्थक नाम रख दिया। उस दिनसे इस पर्वतका यह नाम पृथ्वी-तलमें प्रसिद्ध हो गया। जिनेश्वर भगवान्के दर्शन करने से चन्द्रशेखरको भी अपने पाप-कर्मोंपर पछतावा होने लगा। उसने सर्व कर्मोंका क्षय कर, केवलज्ञानी मुनीश्वरसे पूछा,—"हे भगवन्! मेरे मनका मैल कैसे धुलेगा?"

मुनीश्वरने कहा,—"अपने सब पापोंको अच्छी तरह याद करते हुए इस तीर्थमें रहकर निरन्तर तप करनेसे तेरे सब पाप धुल जायेंगे और तेरा मन निर्मल हो जायेगा। कहा भी है, कि—

जन्मकोटिकृतमेकहेलयाकर्म तीव्रतपसा विलीयते।
किं न दाह्यमपि बह्वपि क्षणा दुच्छिखेन शिखिनात्र दह्यते!

*अर्थात्—कठिन तपस्या करनेसे करोड़ों जन्मका किया हुआ पाप सहज ही नष्ट हो जाता है चाहे कैसी भी कड़ी चीज़ क्यों न हो और संख्यामें कितनी ही अधिक क्यों न हो; पर आग उसे जलाही देती है। इसी तरह तप भी पापों को जलाकर खाक कर देता है।"*

मुनि महाराजकी यह बात सुन, वैराग्य प्राप्त कर चन्द्रशेखरने अपने सब पापोंकी आलोचना करते हुए मृगध्वज केवली से दीक्षा अङ्गीकार कर ली। इसके बाद वह बड़ी उग्र तपस्या करता हुआ उसी तीर्थपर मोक्षको प्राप्त हुआ।

अहा! तीर्थ-भूमिकी भी कैसी विशाल महिमा है। जिस मनुष्यने एक मुद्दततक अपनी बहनके साथ व्यभिचार किया, वह भी तपस्या करके शीघ्रही मुक्ति पा गया। यह तीर्थकी ही बलिहारी है!

## उपसंहार

अब निष्कण्टक होकर राज्य करते हुए शुकराज अन्यान्य अर्हन्त-धर्मके सेवक और सम्यग्दृष्टि राजाओंके लिये आदर्श-स्वरूप हो गये। वे द्रव्य-शत्रु और भाव शत्रु—इन दोनोंको ही जय करते हुए अट्ठाईयात्रा, रथयात्रा तथा तीर्थयात्रा—ये तीनों प्रकारकी यात्राएँ करने और साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका—इन चारों संघोंकी भक्ति करने और नाना प्रकारसे जिनेश्वर महाराजकी पूजा करने लगे। पद्मावती और वायुवेगाके सिवा और भी कितनी ही विद्याधरियाँ उनकी स्त्रियाँ बनीं। कुछ दिन बाद रानी पद्मावतीके एक पुत्र हुआ, जिनका नाम पद्माकर रखा गया। उसके बाद रानी वायुवेगाके भी एक पुत्र हुआ, जिसका नाम वायुसार रखा गया। पुत्र पिताके ही समान होता है, इस कहावतके अनुसार ये दोनों पुत्र ठीक अपने पिताकेही समान हुए।

क्रमशः ज्येष्ठपुत्र पद्माकरके सयाने होनेपर राजाने उसे बुद्धिमान् और चतुर जान उसीको गद्दीपर बैठा दिया और वायुसार को युवराजकी पदवी प्रदान करते हुए आप अपनी दोनों स्त्रियों-

के साथ जंगलकी ओर चले गये। सबसे पहले उन्होंने शत्रुंजय-तीर्थ में ही जानेकी इच्छा की। उस तीर्थपर पहुँचतेही उन्हें केवल-ज्ञान उत्पन्न हुआ। सच है, महात्माओंको पदार्थोंका लाभ भी बड़े विचित्र ढंगसे होता है। इसके बाद बहुत दिनों तक पृथ्वीमें विहार करते हुए प्राणियोंके अज्ञानान्धकारका नाश करनेके अनन्तर शुकराज केवलीने अपनी दोनों स्त्रियों के साथ मोक्ष प्राप्त किया।

बस, पाठको! हमारा यह चरित्र यहीं समाप्त होता है। अब हम आपसे विदा होनेके पहले यही कहना चाहते हैं, कि सदा अच्छे गुणोंका संग्रह करनेसे शुकराजने इस संसारमें भी सुख पाया और अन्तमें मोक्षपद भी प्राप्त किया। इस लिये मनुष्यको चाहिये, कि सदा अच्छे गुणोंको अपने जीवनमें लानेकी चेष्टा करे। तीर्थकी महिमा ऐसी प्रबल है, कि उसीके द्वारा शुकराजने अपना गया हुआ राज्य पाया और शत्रुओंका नाश कर डाला। महापापी चन्द्रशेखरने भी तीर्थमें आकर तपस्याके द्वारा अपने दुष्कर्मोंका क्षय किया। इसलिये तीर्थ और मन्त्र, जप और तपमें सदा प्रीति रखनी चाहिये। इससे पापी भी पुण्यात्मा बन जाता है। फिर जो आदमी आपही अच्छा है, उसको इन पुण्य-कर्मोंका आचरण करने से कितना लाभ होगा, यह सोचनेकी बात है।

समाप्त